स्थापना वर्ष:१९४२

नूतन निष्काम पत्रिका

नूतन निष्काम पत्रिका * वर्ष-9 * अंक-6 * मुम्बई * जून-2018 * मूल्य-रु.9/-

महर्षि दयानन्द सरस्वती

देवता और असुरों में अन्तर

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

देवताओं और असुरों की एक मनोरंजक कहानी आपको सुनाता हूँ। एक धनी सज्जन ने एक बार बहुत-से विद्वानों को भोजन का निमंत्रण दिया अतिथियों में देवता थे और असुर भी। जब अतिथि एकत्रित हो गये तो असुरों ने गृहपति से कहा- ''आप लोग सदा हमारे साथ अन्याय करते हो। अब हम अन्याय को सहन नहीं करेंगे।''

गृहपति ने पूछा- ''असुर विद्वानो! आपके साथ कौन-सा अन्याय होता है?''

असुर बोले- ''विद्या में, ज्ञान में, शक्ति में, हर बात में हम देवताओं से आगे हैं। इतना होते हुए भी जहाँ कहीं भी हम दोनों को बुलाया जाता है, वहाँ पहले देवताओं को भोजन मिलता है, बाद में हमको। यह अन्याय सहन करने योग्य नहीं है। आप देवताओं के साथ हमारा शास्त्रार्थ कराइये, किसी भी विषय पर, किसी भी बात के सम्बन्ध में। यदि हम जीत जायँ तो अन्याय को समाप्त कीजिये। अन्यथा हम इस अन्याय को चलने नहीं देंगे।''

गृहपति ने कहा- ''आप क्रोध न कीजिये, पहले आप ही भोजन करेंगे, देवता पीछे खा लेंगे, परन्तु एक शर्त माननी होगी।''

असुरों ने पूछा- ''क्या शर्त है?'

गृहपति ने कहा- ''यह कि आपके दोनों हाथों के साथ कोई तीन-तीन फुट की लकड़ियाँ बाँध दी जायेंगी। एक लकड़ी दायें हाथ के साथ, दूसरी बायें हाथ के साथ। इस प्रकार आपको भोजन खाना होगा।''

असुरों ने कहा- ''ऐसे ही सही, हम खा लेंगे।''

बाँध दी गई लकड़ियाँ। असुर लोग बैठ गये। सामने पत्तल रख दिये गये। उनमें भोजन परोसा जाने लगा। पूरी, कचौरी, हलवा, खीर, रसगुल्ले, गुलाब जामन, गोभी, मटर, आलू, टमाटर सब दिये गये।

गृहपति ने कहा- ''अब खाओ असुर विद्वानो!''

असुरों ने खाने के लिए हाथ बढ़ाए। हाथों में लकड़ियाँ बँधी थीं। उन्होंने हाथ से पूरी उठाई कि मुँह में डालें, परन्तु वह मुँह में पहुँचने की बजाय सिर के पीछे जा गिरी। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु का बुरा हाल हुला। आधे घंटे तक असुर लोग प्रयत्न करते रहे, परन्तु एक भी ग्रास उनके मुँह में नहीं गया।

आधे घंटे के पश्चात् गृहपति ने कहा-''अब उठो असुरो! आपका समय हो गया। 'अब देवता भोजन करेंगे।''

असुर बेचारे भूखे ही उठ गये। स्थान को साफ किया गया। नई पत्तलें रखी गई। उनके पास देवताओं को बैठा दिया गया। उनके हाथों में भी तीन-तीन फुट की लकड़ियाँ बाँध दी गई। उनकी पत्तलों में खाना परोस दिया गया। उन्हें भी कहा गया- ''अब खाओ देवताओ!''

देवताओं ने कहा- ''हम खायेंगे अवश्य, परन्तु एक-दूसरे के सामने बैठकर खायेंगे। हम आधे लोग इधर बैठेंगे, आधे उधर, आमने सामने। हमारी पत्तलें हम लोगों के सामने रख दीजिये।''

गृहपति ने ऐसा ही किया। देवता एक-दूसरे के सामने बैठ गये। एक देवता ने अपने हाथों से सामने बैठे देवता की पत्तल से पूरी उठाई, उसके मुँह में डाल दी। सामने बैठे देवता ने पहले देवता के आगे रखी पत्तल से कचौरी उठाई, उसके मुँह में डाल दि। इस प्रकार सब देवताओं ने एक-दूसरे को भोजन खिला दिया, वस्तुएँ समाप्त कर दीं, सबका पेट भर गया।

यह है देवता और असुर में अन्तर! असुर केवल अपना पेट भरना चाहता है, परन्तु भर नहीं पाता। देवता दूसरे को खिलाकर प्रसन्न होता है। औरों को खिलाने में उसका अपना भी पेट भर जाता है।

कल्पवृक्ष

नारद जी एक बार नगर में आये। एक पुराना मित्र उन्हें मिला, संसार की विपत्तियों में फँसा हुआ। नारद जी ने कहा- ''यहाँ संकट में पड़े हुए हो। आओ, तुम्हें स्वर्ग ले चलूँ।''

उसने कहा- ''और क्या चाहिये!''

दोनों पहुँच गए स्वर्ग में। वहाँ सुन्दर पत्तों वाला, सुन्दर छाया वाला कल्पवृक्ष खड़ा था। नारद जी ने कहा- ''तुम इस वृक्ष के नीचे बैठो। मैं अभी अन्दर से मिलकर आता हूँ।''

नारद जी चले गये तो उस आदमी ने इधर-उधर देखा। सुन्दर वृक्ष, सुन्दर छाया, धीमी-धीमी शीतल वायु। उसने सोचा- कितना उत्तम स्थान है! यदि एक आराम-कुर्सी होती तो मैं उसपर बैठ जाता।

वह था कल्पवृक्ष। उसके नीचे खड़े होकर जो इच्छा की जाय, वह पूरी होती है। उसी समय पता नहीं कहाँ से एक आराम-कुर्सी आ गई। वह उसपर बैठ गया। बैठकर उसने सोचा-एक पलँग होता तो थोड़ी देर के लिए मैं लेट जाता। विचार करने की देर थी कि पलँग भी आ गया। वह लेटते ही सोचने लगा- घर होता होता तो पत्नी से कहता कि मेरी टाँगें दबा दे, मेरा सिर मल दे। सोचते ही बहुत-सी अप्सराये वहाँ उपस्थित हो गई। कोई पाँव दबाने लगी, कोई गीत गाने लगी, कोई नाचने लगी। उस आदमी ने उन सबको देखा तो सोचा- यदि इन सब स्त्रियों के साथ मेरी पत्नी मुझे देख ले तो झाड़ू लेकर मेरी पिटाई कर डाले। सोचना अभी समाप्त भी नहीं हुआ था कि हाथ में झाड़ू लेकर पत्नी आ गई। धड़ाधड़ उसे मारने लगी। अप्सरायें भाग गईं। वह पलँग से उठकर दौडा। आगे-आगे वह, पीछे-पीछे झाड़ू को लिये हुए पत्नी। नारद जी ने लौटते हुए उसे दुर से देखा; पुकारकर कहा- ''मूर्ख! सोचना ही था तो कोई अच्छी बात सोचते। यह क्या सोच बैठे तुम? यह तो कल्पवृक्ष है।''

सो भाई मेरे, प्राणायाम के कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर अच्छी बातें सोचना, बुरी बातें नहीं सोचना!

❐❐❐

आर्य समाज सांताक्रुज़, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : ९ अंक ६ (जून -२०१८)

- दयानंदाब्द : १९५, विक्रम सम्वत् : २०७५
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११९

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री, लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य, यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क
— पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/- — एक प्रति : रु. ९/-
— १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/- — वार्षिक : रु. १००/-
— १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/- — आजीवन : रु. १०००/-
— विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।
वर्गीकृत विज्ञापन

रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-

चैक/डीडी/मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। **'नूतन निष्काम पत्रिका'** का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विट्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.), मुंबई -५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
देवता और असुरों में अन्तर	२
सम्पादकीय	३
ईश्वर भक्ति क्यों करें?	४-६
आदर्श जीवन निर्माण शिबिर सफलता...	६
'आप : ' में निवास करनेवाला राजा	७-८
तीन रत्नों की सामर्थ्य के सुक्रतु बनें	९-१०
सदाचार और कर्मण्यता	११-१३
स्वर्गिक सुख के दस उपाय	१४-१५
पाप निवारक देव	१५
संसार-चक्र में आनन्द नहीं	१६

सम्पादकीय

मिशनरी भावना का अभाव

मिशनरी शब्द की उत्पत्ति यदि देखें तो यह ईसाइयत के प्रचार और ईसाइयत धर्म में लोगों को जोड़ने के लिये समर्पित कार्यकर्ता के लिये कहा गया है। कालांतर में यह शब्द व्यापक अर्थ के साथ प्रचलित हो गया। तथापि मूल रूप से इसका अर्थ यही है कि किसी विशेष लक्ष्य की प्राप्ति के लिये लिये समग्र शक्ति को लगा देना। वस्तुतः मिशनरी का अर्थ तभी तक सार्थक कहलायेगा जब तक समग्र शक्ति व कार्य लक्षित उद्देश्य की पूर्ति में ही लग रहा हो।

अपने अपने सम्प्रदाय के विचार व अनुयायियों की संख्या बढ़ाने के लिये ईसाई, इस्लाम व बौद्ध मत के लोग पूरे विश्व में निरंतर प्रयत्नशील रहते हैं। ठीक इसके विपरीत महर्षि दयानंद सरस्वती ने हमें वैदिकधर्म का मार्ग दिखलाया और वेदिकधर्म से विमुख हो चुके भटके हुये लोगों को पुनः ज्ञान विज्ञान तर्क की कसौटी पर रखकर वैदिकधर्म में शामिल होने का आह्वान किया। परिणामस्वरूप आर्य समाज की स्थापना के साथ ही मिशनरी भावना के साथ हजारों वैदिकधर्मियों ने वैदिकधर्म का प्रचार किया जिसके परिणामस्वरूप हजारों आर्य समाजों की स्थापना, शैक्षणिक संस्थाओं का फैलाव, गुरुकुलों की स्थापना, परोपकार हेतु संस्थाओं की स्थापना आदि हुई।

यह सब मिशनरी भावना के साथ निष्काम भाव से समर्पित तन मन धन के त्याग से ही संभव हो सका। कालांतर में इन्हीं जगहों में मिशनरी भावना के विपरीत के कार्यों हेतु सत्ता का इस्तेमाल होने लगा। यही कालांतर में लक्ष्य से भटकने का कार्य प्रतीत हो रहा है। आज सत्ता और संपत्ति संरक्षण में ही सारी शक्ति व्यय हो रही है। आज आर्य संस्थाओं में विधिवत मिशनरी भावना के कार्यकर्ताओं का अभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। अन्य अवैदिक संस्थाये आज सिर्फ मिशनरी भावना से जुड़े कार्यकर्ताओं की बदौलत ही हमसे आगे बढ़ती हुई दिख रही हैं।

अधिकांशतः कार्यकर्ता प्रचार के नाम पर धन कमाकर अपने और अपने परिवार के पालन पोषण तक ही सीमित हैं। इसके परिणामस्वरूप आर्य समाज तथाकथित अन्य पौराणिक संप्रदायों के साथ खड़ा दिख रहा है जो आर्य समाज के अस्तित्व के लिये घातक है। आज आवश्यकता है कि आर्य समाज में मिशनरी भावना से जुड़े कार्यकर्ताओं की एक राष्ट्रीय समिति बनायी जाये जो सिर्फ वैदिकधर्म के प्रचार के कार्य को ठीक उसी तरह से निभाये जैसे ईसाई मिशनरी करते हैं। ईसाई मिशनरियों की देखभाल उनकी संस्थाएं करती हैं। आम आदमी के सामने उनकी छवि सिर्फ प्रचारक की होती है। आज आवश्यकता है कि आर्य समाज अपनी शक्ति को केंद्रित करके मिशनरी प्रचारकों को तैयार करने में भी जुटाये अन्यथा जहां से महर्षि ने सुधार की शुरुवात की थी आज हम लौटकर वहीं पहुंचते दिख रहे हैं।

संगीत आर्य
मो.: ९३२३५ ७३८९२

ईश्वर भक्ति क्यों करें?

पं. सिद्धगोपाल कविरत्न

कमला– लो, बहिन, मैं आ गयी। कल के प्रश्न का उत्तर दो।

विमला– तुम्हारा कल का प्रश्न था- ईश्वर की भक्ति क्यों करनी चाहिए, उनकी स्तुति, प्रार्थना से क्या लाभ हैं? अच्छा सुनो! संसार का प्रत्येक पदार्थ अपने भण्डार या केन्द्र की ओर जाना चाहता है। यह नियम जड़ और चेतन दोनों प्रकार के पदार्थों पर लागू होता है। अग्नि की ज्वाला सदैव ऊपर की ओर जाती है, क्योंकि अग्नि का भण्डार सूर्य ऊपर विद्यमान है। मिट्टी का ढेला चाहे कितनी जोर से ऊपर की ओर फेंको, वह सदैव अपने भण्डार पृथ्वी की ओर ही अन्त में आता है। सूर्य की किरणें समुद्र के जल को भाप बनाकर हवा में सम्मिलित कर देती हैं, परन्तु वही भाप बादल में परिवर्तित होकर जल बनकर बरसती है और अनेकों नदी-नालों द्वारा पुन: समुद्र में पहुँच जाती हैं। यही अन्य पदार्थो का हाल है। संसार में प्रत्येक वस्तु का भण्डार मौजूद है। जल का भण्डार समुद्र, अग्नि का भण्डार सूर्य, वायु का भण्डार वायु-चक्र, मिट्टी का भण्डार पृथ्वी, घटाकाश महाकाश का भण्डार वृहदाकाश। इसी भाँति ज्ञान का भी भण्डार जगत् में मौजूद है और वह परमात्मा हैं। मनुष्य को जो भी ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह परमात्मा से ही हुआ है। किसी मनुष्य में बिना पढ़ाये ज्ञान प्राप्ति की योग्यता नहीं है, यदि मनुष्यमें बिना पढ़ाये ज्ञान-प्राप्ति की योग्यता होती तो स्कूल, कॉलेज, पाठशालायें तथा विद्यालयों की आवश्यकता ही न थी और न पढ़ाने वालों की आवश्यकता थी। माता, पिता अपने बच्चों को प्रारम्भ में बोलना सिखाते हैं और पदार्थों का ज्ञान कराते हैं। यह पैसा है, यह रुपया है, यह रोटी है, यह पानी है, यह चाचा है, यह भाई है ऐसी-२ हजारों बातें याद कराते और बताते हैं फिर वे ही बच्चे पाठशाला में गुरु द्वारा संसार के विविध विषयों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। लेकिन उन माताओं और पिताओं तथा गुरुओं का ज्ञान भी अपना नहीं होता है। उन्होंने भी अपने माता-पिता और गुरुओं से वही बाते सीखी हैं। इसी तरह हर एक व्यक्ति एक दूसरे से ज्ञान प्राप्त करता हुआ चला आया है। प्रश्न उत्पन्न होता है, जब सबने एक दूसरे से ज्ञान प्राप्त किया है, तो सृष्टि के आदि के मनुष्यों ने किन माता-पिता और गुरुओं से ज्ञान सीखा? क्योंकि उनसे पहले तो कोई था ही नहीं। उत्तर यही है, उस समय उन्होंने परमात्मा से ज्ञान सीखा। यदि कहा जाय परमात्मा ने ज्ञान कैसे सिखाया कैसे परमात्मा ने मनुष्यों को पढ़ाया, जब कि उसके शरीर ही नहीं? इसका उत्तर यह है ज्ञान देने और पढ़ाने में अन्तर होता है। पढ़ाया जाता है शब्दों द्वारा और ज्ञान दिया जाता है आत्मा में। परमात्मा सर्वत्र व्यापक होने के कारण उन मनुष्यों में भी व्यापक होता है, जिनको वह सृष्टि के आदि में बनाता है। अतएव अपनी ज्ञानमयी शक्ति से चार ऋषियों की आत्मा में ज्ञान का प्रकाश करता है, जिनके अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा नाम हैं। वे ऋषि शब्दों द्वारा संसार के अन्य मनुष्यों को फिर पढ़ाते हैं और तब पढ़ने और पढ़ाने का क्रम चल पड़ता है। अगर परमात्मा सृष्टि के आदि में ऋषियों को ज्ञान न देते, तो पढ़ने-पढ़ाने की परम्परा चल ही नहीं सकती। इससे सिद्ध है कि मनुष्यों ने जो भी ज्ञान सीखा है वह परम्परा से सीखा है, और ज्ञान का विकास किया है वह परमात्मा की दी हुई बुद्धि से परमात्मा की बनाई हुई सृष्टि को देककर किया है। मनुष्य ज्ञान का विकास तो कर सकता है परन्तु ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक उसे ज्ञान प्राप्त न कराया जाय। आदि सृष्टि में ऋषियों के हृदय में परमात्मा बीज रुप ज्ञान देता है। बाद में वे वृक्ष रुप विकास ऋषियों और बुद्धिमान् मनुष्यों द्वारा होता है। यही सदा से नियम रहा है, और रहेगा। हाँ, तो मैं यह कह रही थी कि जब संसार का प्रत्येक पदार्थ अपने भण्डार की ओर जाना चाहता है और जाता है तो चेतन जीवात्मा जो कि अल्पज्ञ अर्थात् थोड़े ज्ञान वाला है वह ज्ञान के भण्डार चेतना परमात्मा की ओर जाना क्यों न चाहेगा? जीवात्मा भी परमात्मा की ओर जाना चाहता है, क्योंकि उसका विकास अर्थात् उन्नति बिना परमात्मा के हो ही नहीं सकती। जड़ का जड़ से और चेतन का चेतन से विकास होता है। संसार के किसी भी जड़ पदार्थ से चेतन जीवात्मा की उन्नति नहीं हो सकती। हाँ, जड़, पदार्थों से जड़ शरीर की उन्नति अवश्य हो सकती है, यदि वह उनका ज्ञानपूर्वक उपयोग करे। जीवात्मा अज्ञानतावश संसार के पदार्थों में उन्नति की खोज करता है परन्तु उनसे उन्नति होती नहीं इसलिए वह अशान्त रहता है। संसार में जितना भी दु:ख है वह अज्ञानता के कारण है। पदार्थों की वास्तविकता का अगर जीवात्मा को पता हो तो उसे दु:ख हो ही नहीं सकता। दु:ख और बन्धनों का आवरण जीवात्मा पर भी तभी तक है जब तक वह अविद्या को विद्या, असत्य को सत्य और जड़ को चेतन समझ रहा है। ज्ञान का भण्डार परमात्मा ही सुखों का भण्डार है। उसके अतिरिक्त सुख संसार के किसी भी पदार्थ में नहीं है। अगर संसार के पदार्थों में सुख होता तो सारा संसार सुखी नजर आता, परन्तु अवस्था यह है कि संसार का प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है। जब सुख चाहता है तो पता चला सुख उसके पास नहीं है। यदि होता तो सुख चाहता ही क्यों? सब ईश्वर की भक्ति और स्तुति प्रार्थना करने का यही मतलब है कि मनुष्य को परमात्मा से प्रेम हो जाए जो उसके जीवन का उद्देश्य है। ज्यों है। ज्यों-२ मनुष्य परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना और उपासना शुद्ध मन से करेगा त्यों-२ वह ईश्वर के समीप होता चला जायेगा और अन्त में संसार के समस्त दु:खों और बन्धनों से छूटकर परमानन्द को प्राप्त हो जायगा।

कमला– बहिन! तुम्हारा यह कहना मिथ्या है कि संसार के पदार्थों में सुख नहीं है। यदि संसार के पदार्थों में सुख न होता, तो संसार के प्राणी संसार के पदार्थों को क्यों चाहते? यदि धन में सुख न होता तो लोग धन को क्यों एकत्र करते? भोजन में सुख न होता तो लोग भोजन क्यों करते? वस्त्रों में सुख न होता, तो लोग वस्त्र क्यों पहनते? यदि मकान महल आदि में सुख न होता, तो लोग उन्हें क्यों बनाते? तात्पर्य यह है कि संसार के प्रत्येक पदार्थों में सुख है तभी लोग उसे चाहते हैं और उन्हें छोड़ना नहीं चाहते। पदार्थों के संयोग से मनुष्य सुख मानता है और वियोग में दु:ख मानता है। फिर कैसे मान लें कि संसार में सुख नहीं।

विमला– बहिन! वास्तव में संसार के पदार्थों में सुख नहीं है, सुखाभास, अर्थात् सुख सा प्रतीत होता है। सुख तो प्रत्येक मनुष्य के अपने ही अन्दर है। जब मनुष्य संसार के किसी पदार्थ का प्रयोग करता है और उसे

सुख प्रतीत होता है तो वह समझता है कि इस पदार्थ से ही सुख मिल रहा है। उसी की चित्त की एकाग्रता से उसे सुख अनुभव हो रहा है। कुत्ता जब हड्डी को चूसता है, तो दाढ़ के छिल जाने से खून निकलने लगता है। ज्यों-२ खून निकलता है त्यों-२ वह और जोर के साथ उसे चूसता है। वह समझता है कि हड्डी से ही खून निकल रहा है। लेकिन निकल रहा है उसकी अपनी दाढ़ से। हड्डीमें खून कहाँ है। ठीक इसी प्रकार संसार के पदार्थों में सुख कहाँ है! सुख तो अपने ही अन्दर है, जो प्रत्येक प्राणी को अनुभव होता है। देखो यदि धन में सुख होता, तो कोई धनी दु:खी न देखा जाता। परन्तु जितनी चिन्तायें भय और दु:ख धनियों को हैं, उतने निर्धन को नहीं। यदि एक धनवान आदमी बीमारी से कष्ट पा रहा है, तो वह धन से दवा खरीद सकता है, परन्तु तन्दुरस्ती नहीं खरीद सकता। यदि वह मूर्ख है, तो पुस्तकें खरीद सकता है, मास्टर नौकर रख सकता है, परन्तु धन से विद्या प्राप्त नहीं कर सकता। विद्या तो परिश्रम से ही प्राप्त कर सकेगा। इसी तरह धन से भोजन खरीद सकता है भूख नहीं खरीद सकता। ऐसे भी मनुष्य संसार में हैं जिनके पास लाखों करोड़ों रुपये की सम्पत्ति है किन्तु आध पाव दूध चावल भी हजम नहीं कर सकते। अब बताओ धन में सुख कहाँ है? यदि भोजन में सुख माना जाय, तो चार रोटी खाने में जो सुख मिलता है, सोलह रोटी खाने में चौगुना सुख मिलना चाहिये, क्योंकि सुख जब रोटी का धर्म है तो रोटी की वृद्धि के साथ-२ सुख की मात्रा भी बढ़नी चाहिये। परन्तु होता यह है कि भूख से यदि अधिक भोजन किया जाता है तो पेट में दर्द हो जाता है, और डाक्टर या वैद्य की आवश्यकता पड़ने लगती है, भूख के अन्दर रुखा सूखा भोजन भी अमृत के समान प्रतीत होता है। भूख न होने पर अमृत में भी स्वाद नहीं आता। इसी तरह वस्त्रों को ले। यदि वस्त्रों में सुख माना जाय तो जाड़े में ऊन और रुई के मोटे-२ वस्त्र जो सुखदायक प्रतीत होते हैं, गर्मी में भी वे ही वस्त्र वैसे ही सुखदायक प्रतीत होने चाहिए और जो वस्त्र गर्मी में सुखदायक प्रतीत होते हैं वे सर्दी में भी वैसे ही प्रतीत होने चाहिए। जब सुख वस्त्रों का धर्म है तो प्रत्येक समय उनसे सुख ही मिलना चाहिए। क्या कारण है, गर्मी के वस्त्र सर्दी में और सर्दी के वस्त्र गर्मी में आराम नहीं देते! जो जिसका धर्म है वह प्रत्येक समय एक जैसा ही रहना चाहिए। जैसे अग्नि का धर्म जलाना है, उसे किसी भी समय छुओ, फौरन जलायेगी। मिश्री का धर्म मीठापन है किसी भी समय खाओ मीठी प्रतीत होगी। इसी प्रकार यदि संसार के पदार्थों का धर्म सुख देना हो तो संसार के पदार्थ प्राप्त करने पर मनुष्य सुख की खोज न करते। उन्हें तो प्रत्येक समय सुख का अनुभव होना चाहिए था। भला बताओ तो सही एक मनुष्य जिसे १०५ डिग्री का बुखार चढ़ा हुआ है उसे रेशम की डोरी से बने हुए , मखमल बिछे हुए, सोने के पलंग पर लिटा देने से उसके दु:ख में कोई कमी हो सकेगी? कदापि नहीं। इसलिये मैं कहती हूँ सुख संसार के पदार्थों में नहीं, सुख का भण्डार केवल परमात्मा ही है।

कमला– यदि संसार के पदार्थों में वास्तव में सुख नहीं, अपने अन्दर है तो लड्डू या जलेबी खाने पर आनन्द क्यों आता है? मिट्टी खाने से क्यों नहीं आता! रोटी खाने में आनन्द क्यों आता है, पत्थर खाने से क्यों नहीं आता? क्या कारण है मिश्री खाने से आनन्द आता है, घास खाने से नहीं? क्या कारण है किसी सुन्दर दृश्य को देखने से आनन्द आता है, श्मशान को देखने से नहीं?

विमला– लड्डू, जलेबी, मिश्री आदि जितने भी खाने योग्य पदार्थ हैं उन्हें खाने पर उन्हीं के गुणों का अनुभव होता है, आनन्द का नहीं। जैसे मिश्री खाई तो मिठास मालूम दी और मिर्च खाई तो कड़ुवापन मालूम दिया। अब न तो कड़वाहट का नाम आनन्द है, न मिठास का। जिस चीज में मनुष्य के चित्त की एकाग्रता हो गयी, उसमें उसने आनन्द समझ लिया यदि मिश्री में आनन्द होता तो ज्वर की अवस्था में आनन्द देती, परन्तु ज्वर की अवस्था में मिश्री बेस्वाद प्रतीत होती है। इसी प्रकार मिर्च खाने का जिसे अभ्यास नहीं है उसे मिर्च जहर के समान लगती है। यही अवस्था संसार के अन्य पदार्थों की है। रही यह बात कि मिट्टी खाने से आनन्द नहीं आता? मिट्टी खाने से भी आनन्द आता है, अगर उसमें चित्त की एकाग्रता हो जाय। बहुत से भाइयों और बहिनों को मैंने कच्चे मिट्टी के सकोरे और चिकनी मिट्टी खाते देखा है। बहुत से जानवर कंकड़ और पत्थर खाते हैं। कंकड़ -पत्थर को जाने दो। शराब जैसी दुर्गन्धयुक्त तीखी और कसैली तथा अफीम जैसी कड़वी वस्तु में लोग आनन्द मानते हैं। परन्तु क्या वह आनन्द उन पदार्थों में है? नहीं। आनन्द तो उन्हें मिलता है उन्हीं के चित्त की एकाग्रता से। जितनी देर चित्त में एकाग्रता रहती है उतनी देर तक आनन्द भी रहता है। प्रश्न हो सकता है किसी पदार्थ में चित्त की एकाग्रता कैसी होती है? उत्तर यह है कि किसी भी चीज का मनुष्य जब अभ्यासी हो जाता है, तो उस चीज में उसको क्षणिक एकाग्रता होने ही लगती है क्योंकि अभ्यास करते-२ मन पर उस पर उस वस्तु के संस्कार पड़ जाते हैं और वे संस्कार बार-२ मनुष्य को उसी वस्तु के प्रयोग के लिये प्रेरित करते हैं। यही बात किसी सुन्दर दृश्य को देखने की है। मनुष्य अपना मन प्रसन्न करने के लिए नदी, समुद्र, वन-उपवन तथा पहाड़ों का भ्रमण करने जाता है। लेकिन अगर उसके पीछे कोई भयंकर मुकदमा हो, तो उसे किसी स्थान पर आनन्द नहीं आता। सारे स्थान श्मशान के समान प्रतीत होते हैं। क्योंकि मुकदमे की चिन्ता के कारण उसके मन में एकाग्रता नहीं। एक मनुष्य आकर्षक दृश्य, संगीत गायन आदि का आनन्द लेने सिनेमा जाता है, परन्तु घर में उसका प्यारा पुत्र बीमार है। वह सिनेमा देख रहा है, फिर भी उसे आनन्द नहीं आता। क्यों? इसलिये कि पुत्र के रोग-ग्रस्त होने के कारण उसके चित्त में एकाग्रता नहीं होती। और देखो! यदि मैं उन्हें इस समय स्वादिष्ट लड्डू खाने को दूँ, और तुम उसे खाने लगो परन्तु मैं एक काम करुँ तुम्हारा ध्यान किसी दूसरी ओर कर दूँ, तो तुम सारा लड्डू खा जाओगे, परन्तु तुम्हें उसका स्वाद मालूम नहीं होगा। प्राय: ऐसा होता भी है, मनुष्य किसी पदार्थ को खा जाता है परन्तु ध्यान दूसरी ओर होने के कारण वह उसका दोष-गुण जान ही नहीं पाता है। अतएव सिद्ध हुआ कि सुख बाहर के पदार्थों में नहीं केवल चित्त की एकाग्रता में है।

कमला– तुम तो कहती थी सुख का भण्डार परमात्मा है, अब कहती हो, सुख चित्त की एकाग्रता में है, यह दो तरह की बातें क्यों?

विमला– चित्त की एकाग्रता में ही सुख स्वरुप परमात्मा का अनुभव होता है उसी से सुख मिलता है। अज्ञानी मनुष्य समझता है कि सुख बाहर के पदार्थों से मिल रहा है। ये दो तरह की बातें नहीं हैं। बात एक ही है, परन्तु है जरा गहराई से सोचने की चीज है। संसार के पदार्थों में अभ्यास के कारण

क्षणिक एकाग्रता होती है, इसलिए क्षणिक आनन्द मिलता है यदि पूर्णरूपेण भगवान की भक्ति में मन एकाग्र करने का अभ्यास किया जाय तो अन्त में परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है, जो मानव जीवन का लक्ष्य है। इसलिए ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना की आवश्यकता है ताकि चित्त अधिक से अधिक एकाग्र हो, और अधिक से अधिक आनन्द मिले।

कमला– इसका क्या प्रमाण है, कि जितना चित्त अधिक एकाग्र होगा, उतना ही अधिक आनन्द मिलेगा?

विमला– इसका प्रभाव मैं तुम्हें जागृत और सुषुप्ति अवस्था से देती हूँ। देखो जागने की हालत में मनुष्य की वृत्तियाँ संसार के पदार्थों की ओर फैली रहती हैं। कभी मन किसी पदार्थ की ओर जाता है कभी किसी पदार्थ की ओर। इस कारण इसमें स्थिर एकाग्रता उत्पन्न नहीं होगी। लेकिन सोने की हालत में उसके मन की वृत्तियाँ नितान्त एकाग्र हो जाती हैं, तब उसे बड़ा आनन्द आता है प्रात:काल उठकर कहता है- मैं बड़े सुख से सोय बड़ी नींद आई।' उसे सोने से जो आनन्द मिला वह चित्त की एकाग्रता के कारण मिला क्योंकि आत्मा का प्रकृति के पदार्थों से सम्बन्ध छूट जाने के कारण परमात्मा से सम्बन्ध हो गया। जीवात्मा का सम्बन्ध या तो परमात्मा से होता है या प्रकृति से होता है। जितना अधिक सम्बन्ध प्रकृति से होगा, उतना ही दु:ख बढ़ता जायेगा। जितना अधिक परमात्मा से सम्बन्ध होगा, उतना ही सुख बढ़ता चला जायेगा। एक मनुष्य जेलखाने में पड़ा हुआ है। बुखार में पीड़ित है, पेट में एक फोड़ा उठा हुआ है। लाखों रुपये का कर्जदार है, घर में आग लग गई है, स्त्री-पुत्र का देहान्त हो गया। तात्पर्य यह है कि वह अनेकों अनेक दु:खों और चिन्ताओं से ग्रसित है। ये चिन्ताएं और दु:ख कब तक हैं? जब तक वह जागृत अवस्था में है परन्तु यदि वह किसी प्रकार सो जाता है, तो उसके सारे दु:ख और चिन्तायें छूट जाती हैं। उस समय जो आनन्द एक राजा को आता है वही उसे आता है। मनुष्य ही नहीं सुषुप्ति अवस्था में प्रत्येक प्राणी को आनन्द आता है। क्योंकि उस समय मन की वृत्तियाँ फैली हुई नहीं होती। एक स्थान पर एकत्रित होती हैं। चित्त की वृत्तियों की एकाग्रता का नाम ही 'योग' अर्थात् परमात्मा से मेल है। सुषुप्ति अवस्था में तो जीवात्मा का बिना ज्ञान के ईश्वर से मेल होता है। परन्तु स्तुति, प्रार्थना और उपासना द्वारा जब ज्ञान पूर्वक परमात्मा से मेल होता है तो उसको आत्मिक उन्नति कहा जाता है। और यह उन्नति समाधि द्वारा पराकाष्ठा पर पहुँचकर जीवात्मा को परमात्मा में तन्मय करा देती है, जो जीवन का उद्देश्य है।

कमला– स्तुति, प्रार्थना, उपासना किसे कहते हैं?

विमला– श्रद्धापूर्वक ईश्वर के गुणों का वर्णन करना, 'स्तुति' उन्हीं गुणों को अपने दोषों का सुधारने के लिये ईश्वर से सहायता मांगने का नाम 'प्रार्थना' संसार के पदार्थों से अहंकार का भाव हटाकर मेरे समीप परमात्मा और परमात्मा के समीप हूँ, ऐसी दृढ़ धारणा बनाने का नाम 'उपासना' है।

कमला– बहिन! आप ईश्वर को शरीर से रहित मानती हैं। परन्तु संसार के बहुत से लोग ईश्वर को शरीरधारी मानते हैं और उसकी भक्ति करते हैं। मैं पूछती हूँ, यदि ईश्वर को शरीरधारी अथवा साकार माना जाये तो उसमे दोष क्या है?

विमला– इस प्रश्न का उत्तर कल दिया जायेगा।

❑❑❑

आदर्श जीवन निर्माण शिविर सफलता पूर्वक सम्पन्न

आर्य वीर दल मुम्बई द्वारा आर्य प्रतिनिधि सभा मुम्बई के संरक्षण एवं माटुंगा बोर्डिंग के विशेष सहयोग में रविवार दिनांक २२ अप्रैल से रविवार दि. २९ अप्रैल २०१८ तक आठ दिवसीय आदर्श जीवन निर्माण शिविर श्री हीर जी भोजराज एण्ड संस कच्छी विसा ओसवाल जैन छात्रालय माटुंगा मुम्बई में आयोजित किया गया। जिसमें लगभग १३५ बच्चों ने भाग लिया। शिबिर का शुभारम्भ श्रीमती सरोजनी गोयल प्रधाना आर्य महिला समाज मांटुगा एवं श्री वेदप्रकाश जी गर्ग प्रधान आर्य समाज चेम्बूर के कर कमलों से ध्वजारोहण के साथ हुआ। शिविर का संचालन आचार्य नरेन्द्र शास्त्री संचालक-आर्य वीर दल मुंम्बई, ने किया। शिबिराध्यक्ष श्री देवेन्द्र एल. शाह मानद मन्त्री माटुंगा बोर्डिंग ने आर्य वीरों को सम्पूर्ण संरक्षण प्रदान करते हुए सभी शिक्षकों और कार्यकर्ताओं को शुभकामनाएं दी। व्यायाम शिक्षक श्री सौरभ आर्य, प्रशान्त आर्य (दिल्ली), मनोज आर्य, अशोक आर्य एवं पवमान आर्य मुंबई ने पूर्ण निष्ठा से बच्चों को व्यायाम, योगासन, प्राणायाम, जूडो- कराटे, धनुर्विद्या, स्केटिंग, संध्या हवन, नैतिक शिक्षा, वैदिक गणित, वैदिक सभ्यता, संस्कृति व महापुरूषों के जीवन चरित्र तथा सम्पूर्ण विकासादि का प्रशिक्षण दिया। शिविर में बच्चों के बौद्धिक विकास हेतु विभिन्न स्थानों से विद्वानों को बुलाया गया, जिसमें श्री संजय शेंडे ने स्कीन प्रोजेक्टर के माध्यम से आर्य वीरों को व्यक्तित्व विकास व सफलता प्राप्ति के उपाय बताये। श्री दिलीप भाई वेलाणी, श्री देवदत्त सरोदे, श्री सन्दीप आर्य, श्री मनीष पोंडा, श्री हुसैन पीतलवाला को प्रशस्ति पत्र प्रदान कर सम्मानित किया गया।

शिविर अध्यक्षता माटुंगा बोर्डिंग के प्रधान श्री अतुलसी भेदा ने की।

मुख्य अतिथि आर्य प्रतिनिधि सभा मुम्बई के प्रधान श्री मिठाईलाल सिंह जीने सभी आर्य वीरों का उत्साह बढ़ाते हुए कहा कि इस प्रकार के शिविरो के माध्यम से ही बच्चों को अच्छे संस्कार मिलते हैं। श्री सुरेश यादव, श्री जितेन्द्र बलवन्तराय भट्ट तथा श्री महेश वेलाणीने अपने विचार प्रकट किये।

इस शिविर में सर्वप्रथम, द्वितीय, तृतीय स्थान पाने को मेडल देकर प्रोत्साहित किया गया। अन्य सभी शिविरार्थियों को भी पुस्तक व प्रमाण पत्र वितरित किया गया।

आर्य वन विकास फार्म ट्रस्ट रोजड़ (गुजरात) की ओर से श्री विनोद वेलाणी एवं श्री परेश पटेल ने जैन छात्रालय के पुस्तकालय हेतु वेदादि वैदिक साहित्य प्रदान किया तथा सभी शिविरार्थियों को भी गुजराती व हिन्दी की पुस्तकें उपहार स्वरूप दी गयी।

श्री ज्ञानप्रकाश आर्य कोषाध्यक्ष- आर्य वीर दल मुम्बई, श्री कल्पेश आर्य वीर दल मुम्बई ने शिविर में विशेष योगदान प्रदान किया। महामन्त्री पं. धर्मधर आर्य सिद्धान्ताचार्य ने उपस्थित सभी महानुभावों एवं सहयोगियों का धन्यवाद किया। शान्तिपाठ, जय घोष व प्रीतिभोज के साथ समारोह सम्पन्न हुआ।

'आप:' में निवास करनेवाला राजा

आचार्य प्रियव्रत

अप्सु ते राजन् वरुण गृहो हिरण्ययो मिथः।
ततो धृतव्रतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु।।१।।

अर्थ- **(राजन्)** सब के राजा **(वरुण)** हे वरणीय भगवन्! **(ते)** तुम्हारा **(हिरण्ययः)** सुवर्णमय **(गृहः)** घर **(अप्सु)** सब मनुष्यों में **(मिथः)** छिपा हुआ है **(ततः)** इसलिए **(धृतव्रतः)** नियमों को धारण करनेवाले **(राजा)** सबके राजा आप **(सर्वा)** सब **(धामानि)** बन्धनों को **(मुञ्चतु)** छुड़ा दीजिए।

परमात्मा का घर सब मनुष्यों में है। मनुष्य के लिए मन्त्र में ''अप्'' शब्द का प्रयोग हुआ है। वेद और वैदिक साहित्य में यह शब्द अनेक अर्थो में प्रयुक्त हुआ है। यह शब्द ''आप्लृ'' धातु से बनता है। इस धातु का अर्थ व्याप्ति होता है। जिसकी सब कहीं व्याप्ति या पहुँच हो उसे ''अप्'' कहते हैं। यह शब्द सदा बहुवचन में ही प्रयुक्त होता है। इससे इसके अर्थ में बाहुल्य का भाव भी समाविष्ट रहता है। जिस पदार्थ में किसी प्रकार का बाहुल्य और जिसकी सब कहीं या बहुत स्थानों में व्यापकता हो, पहुँच हो, उसे ''अप्'' कहा जा सकता है। इस धात्वर्थ के आधार पर ही वेद-शास्त्र में यह शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। मनुष्य अर्थ में भी यह शब्द वेद में अनेक अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। मनुष्य अर्थ में भी यह शब्द वेद में अनेक स्थलों में प्रयुक्त हुआ है, इसलिए ऋषि दयानन्द ने अपने वेदभाष्य में बहुत स्थानों पर ''आप:'' का अर्थ मनुष्य किया है। शतपथब्राह्मण में भी ''आप:'' का एक अर्थ मनुष्य किया गया है। मनुष्य धरती पर सब कहीं फैले हुए पाये हैं, इसलिए उन्हें ''आप:'' (अप् का कर्तृकारक का रूप आप: होता है) कह दिया गया है। इसी आधार पर हमने प्रस्तुत मन्त्र में अर्थ के औचित्य को ध्यान में रखते हुए, इस शब्द का अर्थ मनुष्य किया है।

मन्त्र कहता है कि वरूण भगवान् का घर ''आप:'' में, सब मनुष्यों है। भगवन् का निवास सब मनुष्यों में है, भगवान् सबके घट-घट के वासी हैं, इस बात को आलंकारिक ढंग से मन्त्र में यों कह दिया गया है कि प्रभु का घर सब मनुष्यों में है। प्रभु का वह घर ''हिरण्यय'' है- सुवर्णमय है। उसकी कान्ति और आभा सुवर्ण जैसी दीप्त और आकर्षक है। सुवर्ण के वाचक हिरण्य शब्द का योगिक अर्थ होता है 'हितरमणीय'- हितकारी और रमणीय। सुवर्ण-जैसा हितकारी और रमणीय होता है वैसा ही हितकारी और रमणीय भगवान् का यह घर है। तात्पर्य यह है कि हम सब मनुष्यों के हृदयों सें निवास करनेवाले वरूण प्रभु सबके हितकारी हैं और बड़े रमणीय हैं- उनकी दीप्त, आभा और कान्ति सुवर्ण की भाँति चित्ताकर्षक है। हम सबके भीतर बना हुआ यह वरूण प्रभु का घर ''मिथ:''- रहस्य में रहनेवाला है, छिपा हुआ है। सर्वसाधारण को यह घर दीखता नहीं है। यद्यपि भगवान् हम सभी के हृदयों में निवास करते हैं तो भी हम इस तत्त्व को जानते नहीं हैं। साधारण रूप में वे हमसे छिपे ही रहते हैं, इसलिए हमें साधारण तौर पर प्रभु की हिरण्ययता-हितकारिता और रमणीयता- अनुभव नहीं होती। परमात्मा के रूप में कैसा परमहितकारिणी और परमसुन्दर महाशक्ति हमारे हृदयों में विराज रही है, इसे सामान्यत: हम कभी अनुभव नहीं करते हैं, परन्तु जब कभी हमारी आँखें खुल जाती हैं, रहस्य का पर्दा हमारे आगे से हट जाता है, हम प्रभु के निवास को अपने हृदयों में अनुभव करने लग जाते हैं, तब प्रभु का जो हिरण्यय- सुवर्णमयरूप हमारे मानस चक्षुओं के आगे आता है उसकी आभा बस, अनुभव करने की ही वस्तु होती है। उस अवर्णनीय रूप का शब्दों में चित्र खेंचना असम्भव है।

हम सबके हृदयों में घर बनाकर बैठे हुए हुए वे सबके राजा वरूण ''धृतव्रत'' हैं। उन्होंने विश्व में भाँति-भाँति के व्रतों को, नियमों को चलाकर धारण किया हुआ है। उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र के पदार्थों के अपने-अपने नियम बनाये हैं और सब पदार्थों को अपने शासन में रखकर वे प्रभु उनसे उन नियमों का पालन करा रहे हैं। संसार के किसी पदार्थ में उनके निर्धारित नियमों का भंग करने की शक्ति नहीं है। उनके नियमों का भंग करके संसार का कोई पदार्थ अपनी सत्ता ही नहीं रख सकता। हमारे आत्मा स्वतन्त्र होने के कारण प्रभु के निर्धारित नियमों का अनेक बार उल्लंघन कर बैठते हैं, परन्तु उनका उल्लंघन करते ही हमें कष्ट भोगना पड़ता है। उस धृतव्रत् भगवान् के व्रतों को तोड़कर कोई सुखी नहीं रह सकता।

मन्त्र का उपासक प्रभु को सम्बोधित करके कह रहा है कि हे प्रभो! आपका निवास तो हम सबके हृदयों में हैं, इसीलिए आप हम सबके अधिकसे-अधिक समीप हैं और आप विश्वब्रह्माण्ड में अपने नियमों का शासन चलानेवाले राजा हैं, इसलिए आपकी शक्ति भी असीम है। ऐसे शक्तिशाली आपकी समीपता में रहकर भी हम अनेक प्रकार के बन्धनों में जकड़े हुए हैं जिनके कारण हमें सुख-मङ्गल प्राप्त नहीं हो पाता। है प्रभो! आप हमारे सब प्रकार के बन्धनों को छुड़ा दीजिए। आपके बिना हे नाथ! हमारे बन्धनों को कौन काट सकता है? आपमें ही हे प्रभो! यह सामर्थ्य है, इसलिए हम अपने उद्धार के लिए आपकी ही शरण में आये हैं।

मन्त्र में बन्धन के लिए ''धामानि'' शब्द का प्रयोग हुआ है। यह शब्द ''धामन्'' शब्द के प्रथमाविभक्ति के बहुवचन का रूप है। ''धामन्'' शब्द का अर्थ सामान्यत: स्थान, घर और तेज हुआ करता है। यास्काचार्य ने इसके अर्थ नाम, स्थान और जन्म किये हैं। इस सूक्त में ''धामन्'' के ये अर्थ संगत नहीं होते। सारे सूक्त में भगवान् से बन्धनों से छुड़ाने की प्रार्थना हो रही है। सूक्त के तीसरे और चौथे मन्त्रों में बन्धन वाची ''पाश'' शब्द का प्रयोग हुआ हैं, इसलिए हमने मन्त्र के ''धामानि'' पद का अर्थ बन्धन किया है। अथर्ववेद के अधिकांश भाष्यकारों ने भी इस सूक्त के ''सामन्'' पद का अर्थ बन्धन ही किया है। अथर्ववेद के कुछ पाठभेदों में तो ''धामन्'' के स्थान पर ''दामन्'' पद मिलता है। दामन् का अर्थ तो स्पष्ट ही रस्सी बन्धन, पाश होता है। धामन् का शब्दार्थ होता है जो धारण करके रक्खे। धामन् का यह लोक-लब्ध अर्थ कथंचित् बन्धन में संगत किया जा सकता है, क्योंकि बन्धन बँधे हुए व्यक्ति को अपने में धारण करके, पकड़के रखते हैं। कुछ भी हो, इस सूक्त में धामन् का मुख्यार्थ बन्धन ही करना होगा।

यास्काचार्य ने निरुक्त में ''धामन्'' के नाम, स्थान और जन्म ये तीन अर्थ किये हैं। धामन् के इन तीनों अर्थों को ध्यान में रखने से बन्धन के स्वरूप पर बड़ा सुन्दर प्रकाश पड़ता है। हमें, बन्धन में डालने में, हमसे दु:ख के मूल

पाप करवाने में, नाम, स्थान और जन्म कई बार बड़ा भारी कारण होते है। मनुष्य नाम की- यश और कीर्ति की प्राप्ति और रक्षा के लिए अनेक बार बड़े-बड़े अनर्थ कर बैठता है। नाम के लिए मनुष्य पापों को छिपाना चाहता है और इस छिपाने के प्रयत्न में और नये-नये पाप करता जाता है। स्थान भी अनेक बार मनुष्य से बड़े-बड़े पाप करवा डालता है। मनुष्य स्थान के लिए घर-बार, ज़मीन जायदाद और पदाधिकार की प्राप्ति और रक्षा के लिए, भारी-से- भारी पापाचरण करते हुए देखे जाते हैं। जन्म भी अनेक बार मनुष्य से घोर-से-घोर दुष्कर्म करवा डालता है। बहुत बार देखा जाता है कि कोई व्यक्ति यह देखकर कि उसका पिता राजा है, राज्य का कोई पदाधिकारी है या और प्रकाश से प्रभावशाली है, अहंकार एवं मद में भरकर दूसरे लोगों को अनेक प्रकार के कष्ट और पीड़ाएँ देने लगता है। हमारे पाप नाम, स्थान और जन्म किसी भी कारण के किये गये ही दु:ख का हेतु हैं। हमारा प्रत्येक पाप भगवान् की न्याय-व्यवस्था के अनुसार हमें दु:ख में डालेगा। दु:ख का जनक होने के कारण हमारा प्रत्येक पाप बन्धन है। इन तीनों प्रकार के पाप के बन्धनों से छूटने के लिए मन्त्र का उपासक भगवान् से प्रार्थना कर रहा है।

''वरणीय भगवान् का घर 'आप:' में छिपा हुआ है,'' मन्त्र के इस कथन से अध्यात्मविद्या-सम्बन्धी और भी कितने ही सुन्दर निर्देशों की ध्वनि निकलती है। जैसा हमने ऊपर कहा है ''आप:'' के अनेक अर्थ होते हैं। ''आप:'' के दो और अर्थों की ओर यहाँ निर्देश कर देना अप्रासंगिक न होगा। ''आप:'' अमृत को भी कहते हैं। भगवान् आनन्दमय हैं। जो भगवान् का साक्षात्कार कर लेता है वह भी अमृतमय- आनन्द्मय हो जाता है। ''आप:'' का अर्थ ''अक्षिति'' अर्थात् क्षीण न होने की, दीनता न होने की अवस्था भी होता है। भगवान् का निवास अक्षिति में हैं। भगवान् अक्षीण हैं, अविनश्वर हैं, अमर हैं। जो उनका साक्षात्कार कर लेता है, वह भी अक्षित और अमृत हो जाता है। ''आप:'' का अर्थ यज्ञ भी होता है। भगवान् का निवास यज्ञ में है। जिसका जीवन यज्ञमय हो जाता है उसी को भगवान् के दर्शन होते है। ''आप:'' का अर्थ ''सर्वे देवा:''- सब देव भी होता है। भगवान् सूर्य, चन्द्र, अग्नि, जल, वायु, विद्युत् आदि सब देवों में निवास करते हैं। सब देवों में उनकी शक्ति काम कर रही है। जो व्यक्ति इन देवों की विद्या का अध्ययन करके इनके कार्य और नियमों के परिज्ञान द्वारा इनमें व्याप्त होकर काम कर रही परमात्मसत्ता का अनुभव करने की योग्यता रखता है उसी को भगवान् के दर्शन हो सकते हैं। ''आप:'' का अर्थ वीर्य भी होता है। भगवान् का वीर्य में निवास है। जो व्यक्ति ब्रह्मचारी होकर अपने वीर्य की रक्षा द्वारा वीर्यशाली बन जाता है उसी को भगवान् के दर्शन होते हैं। ''आप:'' का अर्थ प्राण भी होता है। भगवान् प्राणों में निवास करते हैं। जो व्यक्ति प्राणों को और प्राणों से उपलक्षित सब इन्द्रियों को वश में कर लेता है, उसी को भगवान् के दर्शन होते है। ''आप:'' का अर्थ श्रद्धा भी होता है। भगवान् श्रद्धा में निवास करते हैं। जिस व्यक्ति का जीवन श्रद्धामय हो जाता उसी को भगवान् के दर्शन होते हैं। ''आप:'' का अर्थ शान्ति भी होता है। भगवान् शान्ति में निवास करते हैं। भगवान् में असीम शान्ति है। जिस व्यक्ति को भगवान् के दर्शन हो जाते हैं उसके जीवन में असीम शान्ति आ जाती है और जो लोग अपने मन आदि की चञ्चलता दूर करके उन्हे शान्तियुक्त कर लेते हैं, उन्हीं को प्रभु के दर्शन होते हैं। ''आप:'' का अर्थ रस भी होता है। भगवान् रस में निवास करते हैं। वेद के शब्दो में भगवान् **''रसेन तृप्त: न कुतश्चनोन:''**- रस से परिपूर्ण है। जिसे भगवान् के दर्शन हो जाते हैं उसका जीवन पूर्ण रसीला हो जाता है। उसके सब ताप मिट जाते हैं। इन अर्थों में से कुछ के द्वारा भगवान् के दर्शनों से मिलनेवाले लाभों की सूचना मिलती है और कुछ के द्वारा उनके दर्शन के साधनों की सूचना मिलती है। अध्यात्मविद्या के प्रेमी साधक को इन सब लाभों को लेने के लिए इन सब साधनों काअवलम्बन करना चाहिए। इन सब लाभों के लिए भगवान् के दर्शन करने हमें कहीं दूर, बाहर नहीं जाना होता। वे भगवान् तो सभी ''आप:'' मनुष्यों के हृदयों में निवास करते हैं। उन्हें देखने के लिए केवल अन्तर्वृत्ति होने की देर है।

हे मेरे आत्मन्! तेरे अपने भीतर विराज रहे उस हिरण्यय भगवान् के दर्शन करने के लिए तेरी आँखें कब खुलेंगी?

विचार शक्ति का चमत्कार

(स्वस्थ मानसिकता)

मान्यवर,

'हमारी मानसिकता हमारे विचारो पर निर्भर करती है। जैसे विचार वैसी मानसिकता। अकसर जब हम किसी पर क्रोध कर रहे होते हैं प्रत्यक्ष रूप में सुधार की दृष्टि से लेकिन परोक्ष रुप में उस व्यक्ति से ईर्ष्या, राग, द्वेष व बदले की भावना से प्रेरित होकर कर रहे होते है। इसे अस्वस्थ मानसिक्ता कह सकते है। इस का मुख्य कारण हमारे बीच विचारों की सस्पष्टता व तालमेल का अभाव होना। जाने अजनामे में अच्छे संबंधो में दूरियाँ हो जाती हैं और मानसिक विकार हम पर हावी हो जाते हैं। यहीं पर सर्वस्वीकारिता का सिदांत कार्य करता है। सर्व प्रथम हमे अपने आप को स्वीकार करना होगा तभी जाकर हम सामनेवाले को स्वीकार कर पाएंगे और तभी सामनेवाला हमे स्वीकार करेगा और तभी विचारों का तालमेल स्पष्ट रूप से बैठ पाएगा। जाने अनजाने में हम ऐसी गलतियाँ कर बैठते है। जिससे सामनेवाला हम से दूरियाँ बना लेता है जिसका हमे अंदाज भी नहीं होता। और जब विपरीत परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं तब असंतोष का सैलाब उमड़ पड़ता है और हम एक दूसरे पर दोषरोपण करने में उलझ जाते हैं। इन बातो का कोई अंत नही है और नही इन भावनाओ पर हमारा नियंत्रण हो पाता है। और एसे वक्त में जीवन का मूल मंत्र याद आता है जो कहता है कि सामनेवाले को बिना शर्त माफ करो. बिना शर्त प्रेम करो सौर वस्तु को स्वीकार या पसंद करते चलों। आत्मरणाधा लेकेइर्ष्या अहंकारपर चोट से अस्वस्थ मानसिकता का जन्म होता है और विचारों में दूरियाँ का लाभ उठाकर तीसरा व्यक्ति लोगो को लड़वाने में सफल हो जाता है। आइये, हम एक स्वस्थ मानसिकता के धनी बने जिससे हमारा स्वास्थ भी अच्छा रहता है और समाज मे हमे प्रेम की खुशबु फैला सकते हैं। धन्यवाद।

राजकुमार भगवतीप्रसाद गुप्त

❒❒❒

तीन रत्नों की सामर्थ्य के सुक्रतु बनें

महात्मा चैतन्यस्वामी

क्रतु का अर्थ है कर्म करने वाला अर्थात् व्यक्ति को सदा कर्मशील बने रहना चाहिए। वेद हमें यही प्रेरणा देता है-

ओ३म् कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतः समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

(यजु. ४०-२)

हे मनुष्य! (इह) इस लोक में (कर्माणि कुर्वन् एव) कर्मों को करते हुए ही तुझे जीना है, **(शतं समाः जिजीविषेत्)** तू सौ वर्ष जीने की कामना कर, **(एवं त्वयि इतः अन्यथा न अस्ति)** कर्म करते हुए सौ वर्ष जीना ही तेरे जीवन का एकमात्र नियम है और कोई अन्य नियम नहीं मगर **(न कर्म लिप्यते नरे)** इन कर्मों में उलझ नहीं जाना बल्कि विरत होकर सदा कर्मशील बने रहना। जीव कर्म करने में तो स्वतन्त्र है मगर फल भोगने में वह परतन्त्र है क्योंकि कर्मों का फल तो न्यायकारी परमात्मा ने देना है। इसलिए इस कर्म-स्वतन्त्रता का लाभ उठाकर सदा कर्मशील बने रहना चाहिए और ये कर्म निष्काम भाव से करने चाहिए यजुर्वेद में ही अन्यत्र जीव को क्रतु कहा है- **ओ३म् क्रतो स्मर** (यजु. ४०-१५) श्री कृष्ण जी भी कहते हैं- **अहं क्रतुरहं यज्ञः** (गीता ९-१६)। गीता में अन्यत्र यह भी कहा गया है कि बिना कर्म के तो व्यक्ति एक क्षण के लिए भी नहीं रह सकता है। अतः कर्म तो करने ही हैं मगर यदि व्यक्ति के द्वारा पुण्यकर्म किए जाएं तो इससे वह निष्काम- कर्मी और सुक्रतु बन जाता है। वेद में सुक्रतु बनने की प्रेरणा दी गई है और साथ ही प्रक्रिया बताई गई है-

ओ३म् त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वैरयद्रयिम्।
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः।।

(सा. १०१५)

मन्त्र में सुक्रतु बनने के लिए मुख्यतः पहली बात कही गई-कि- **त्रीणि त्रितस्य धारया,** जो व्यक्ति जीन में तीन बातों को धारण कर लेता है, वह सुक्रतु बन जाता है। ऐसी बहुत सी तीन बातें हैं मगर यहाँ हम त्रिलोकी की उन तीन मणियों की बात करेंगे जिनका उल्लेख वेद में इस प्रकार किया गया है-

ओ३म् देवाज्जन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः।
न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत।।

(अथर्व. १९-४४-६)

यहाँ जिन तीन मणियों की बात कही गई है, वे वास्तव में हमारा शरीर, मन और मस्तिष्क (अर्थात् बुद्धि व ज्ञान) ही हैं। ऋग्वेद में इन्हीं तीन रत्नों की ओर संकेत किया गया है-

ओ३म् यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य।।

(ऋ. १-१०८-९)

इस मन्त्र के आध्यात्मिक अर्थ में 'अवम पृथिवी' शरीर है, 'मध्यमपृथिवी' हृदयान्तरिक्ष है और 'परमपृथिवी' मस्तिष्करूप द्युलोक है। शरीर, मन और मस्तिष्क अर्थात् स्वास्थ्य, नैर्मल्य व ज्ञानदीप्ति क्रमशः तीन पृथ्वियों के तीन रत्न हैं। वेद में अन्यत्र कहा है-।

गुह्येन व्रतेन त्रितः असि। (ऋ. १-१६३-३)

प्रेरणा दी गई है कि हृदयरूप गुहा के साथ सम्बद्ध ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके तू शरीर, मन व मस्तिष्क तीनों की शक्ति का विस्तार करने वाला बन। ये तीन ही जीवन के सर्वोत्कृष्ट धन हैं तथा इनसे ही हमें 'महाधन' मोक्षानन्द की उपलब्धि भी प्राप्त हो सकेगी। वैदिक-सन्ध्या में गायत्री मन्त्र के बाद हम जिस मन्त्र का पाठ करते हैं वह है- **शं नो देवीरभिष्टये...** महर्षि जी इसका अर्थ करते हैं- 'आरोग्य, मानसिक सुख और आत्मिक आनन्द की वृष्टि करें। 'यहाँ पर प्रारम्भ में ही प्रभु से प्रार्थना कर दी गई है कि हमें आरोग्यता, मानसिक सुख और आत्मिक आनन्द दें। परमात्मा ने हमें हमारे कर्मों के आधार पर बहुत कुछ दिया हुआ है। वेद में एक मन्त्र आया है-

ओ३म् विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः।
सवितारं नृचक्षसम्।।

(यजु. ३०-४०)

उस प्रभु ने हमें बहुत कुछ दे रखा है। यह शरीररूपी रथ उसी का दिया हुआ है और फिर इस शरीर में दो प्रकार के करण (उपकरण) दिए- बहिष्करण- अर्थात् पाँच (वाणी, हाथ पैर, उपस्थ, गुदा) कर्मेन्द्रियाँ और पाँच (श्रोत्र, नेत्र, घ्राण, रसना, त्वचा) ज्ञानेन्द्रियाँ दी हैं और फिर इनसे भी आत्यधिक महत्वपूर्ण मन, बुद्धि, चित्त और अंहकार समन्वित अन्तःकरण दिया। हमारा कर्त्तव्य बनता है कि अनेक प्रकार के अनमोल रत्नों से सुसज्जित इस रथ का सदुपयोग करके अपने जीवन को सार्थकता प्रदान करें।

१. शारीरिक स्वस्थता– वेद में प्रभु कहते हैं-

ओ३म् युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना
हरी उप पर याहि दधिषे भगस्त्योः।
उत्त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषुः
पूषण्वान्वज्रिन्त्समु पल्यामदः।।

(ऋ. १-८२-६)

हे मानव! **(ते ब्रह्मणा)** तेरे वर्धन के लिए मैं **(केशिना)** प्रकाश की रश्मियों वाले **(हरी)** इन्द्रियाश्वों को **(युनज्मि)** तेरे शरीर-रथ में जोतता हूँ **(उपप्रयाहि)** इस रथ से तू मेरे समीप आने वाला हो। इसके लिए तू **(गभस्त्याः)** अपने हाथों में **(दधिष)** इन घोड़ों की लगामों को धारण करने वाला बन। **(उत)** और **(रभसाः)** शक्ति को देने वाले **(सुतासः)** भोजन से उत्पन्न ये सोमकण **(त्वा अमन्दिषुः)** तुझे आनन्दित करें। तू **(पूषण्वान्)** अपना उचित पोषण करने वाला बन। **(वज्रिन्)** हाथ में क्रियाशीलतारूप वज्र को लिए हुए **(पल्या)** वेदवाणीरूप पत्नी के साथ **(समु मदः)** खूब ही हर्ष ही हर्ष का अनुभव कर। स्वस्थ शरीर, पवित्र मन तथा उत्कृष्ट ज्ञानी व्यक्ति ही प्रभु-प्रदत्त इन्द्रियों रूपी घोड़ों को दृढ़तापूर्वक पकड़ सकता है इसलिए सर्वप्रथम हमें उचित आहार, आचार एवं व्यवहार आदि से शारीरिक स्वस्थता प्राप्त करनी चाहिए। शरीर-रूपी रथ यदि स्वस्थ नहीं

होगा तो आगे की यात्रा हो ही नहीं सकेगी, इसलिए निरोगी एवं सबल शरीर के महत्त्व को समझना चाहिए। शारीरिक स्वस्थता के लिए महर्षि चरक जी तीन सूत्र देते हैं- आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य। सीधा सा अर्थ है कि हमारा आहार सात्विक एवं पुष्टिकारक होना चाहिए। इसके साथ ही निद्रा भी पूरी लेनी आवश्यक है अन्यथा यह शरीररूपी रथ रिचार्ज नहीं हो सकेगा। इसके साथ ही अपने शरीर की धातुओं को सुरक्षित रखना चाहिए ताकि इन सोमकणों द्वारा हमारा शरीर सदा ही पुष्ट बना रहे। इस प्रकार के स्वस्थ एवं सबल शरीर द्वारा ही हमारी यात्रा ठीक प्रकार से पूरी हो सकती है। वेद में एक बहुत ही सुन्दर मन्त्र आया है-

ओ३म् अदितिद्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदितिः पंच जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्।।

(ऋ. १-८९-१०)

इस मन्त्र में स्वास्थ्य को 'अ-दिति' अखण्डन कहा गया है और साथ ही कहा गया है कि यह अदिति ही ज्ञान का प्रकाशक है, यही सब प्रकार की अतिवादिताओं से बचाता है, यही हमारी माता और पिता तथा पुत्र है अर्थात् उत्तमता का सृजन करने वाला-रक्षा करने वाला और पुत्रवत् सुख देने वाला है। समस्त द्विव्यगुणों का निर्माण उत्तम स्वास्थ्य, द्वारा ही होता है। इस दृष्टिकोण से यह देवों का भी देव है। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय, इन पंच कोशों का 'सहस्' स्वास्थ्यमूलक यही है। हमारा जो भी विकास हुआ है वा होने वाला है, वह सब स्वास्थ्य पर ही निर्भर करता है।

२. **मानसिक पवित्रता**– शरीर स्वस्थ भी हो मगर यदि मन पवित्र नहीं तो भी व्यक्ति अपने लक्ष्य से भटक जाएगा, क्योंकि मनसः वलायकः असि- मन ही इन्द्रियों का संचालक तथा आत्मा में लीन कराने वाला है। मन के दो ही काम हैं- संकल्प और विकल्प, इसलिए मन को सदा संकल्पशील ही बनाना चाहिए। यदि आपने मन को कहीं एक बार विकल्प दे दिया तो वह आपको हजारों विकल्पों में जीवन भर उलझाए रखेगा। मन की शक्ति को पहचानकर तद्वत् इसका सदुपयोग करने की आवश्यकता है। यजुर्वेद के छः मन्त्रों में मन का जो विवेचन मिलता है वह अपने आप में अनुपम है। वहां मन को यज्जाग्रतो - सोते समय भी चलने वाला, **हत्प्रतिष्ठम्**– हृदय में प्रतिष्ठित, **सुसारथि**- उत्तम सारथी, **दैवम्**– दिव्यम्- दिव्यता से परिपूर्ण, **प्रज्ञानम्**- प्रकृष्ट मान से परिपूर्ण, **चेतः**– आत्म- चेतना का साधक, **धृतिश्च**- धैर्य का साधन, **अमृतं ज्योतिः**– अमरत्व की ज्योति देने का साधन आदि बताया गया है। इतने शक्तिशाली उपकरण का भी यदि व्यक्ति सही-सही उपयोग न कर पाए तो इसे उसकी भारी भूल ही माना जाएगा, इसलिए मन को साधना चाहिए और उसे 'शिवसंकल्पो' बनाना चाहिए। यदि वह शिवसंकल्प के साथ जुड़ गया तो समझो वह आपको लक्ष्य तक अवश्य ही पंहुचा देगा, इसमें जरा सा भी सन्देह नहीं। मन वास्तव में चंचल नहीं बल्कि व्यक्ति ही इसे विकल्प देकर चंचल बनाता है, क्योंकि वह चित-वृत्तियों को स्वतन्त्र छोड़ देता है। योगदर्शन में-

प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः१ (यो.द. १-६)

प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति - ये पांच वृत्तियां बताई गए हैं और फिर इन्हें कैसे रोका जाए इसका उपाय बताया-

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः। (यो.द. १-१२)

अर्थात् निरन्तर अभ्यास और वैराग्य के द्वारा इन वृत्तियों को हटाया जा सकता है। गीता भी मन को साधने का यही उपाय बताया गया है-

असंशय महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलनम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृहयते।।

(गी. ६-३५)

हे महाबाहु! निःसन्देह मन का निग्रह करना बड़ा कठिन है, यह चचंल है, किन्तु हे कुन्ती पुत्र! वह अभ्यास और वैराग्य के द्वारा वश में किया जा सकता है।

३. **बुद्धि की उत्कृष्टता**- मुख्यतः बुद्धि दो प्रकार की होती है- सन्देहात्मक और निर्णयात्मक। गीता के अनुसार संशयग्रस्त व्यक्ति का नाश हो जाता है-

संशयात्मा विनश्यति (गीता ४-४०)

और ऐसी बुद्धि को ही '**अव्यवसायी**' बुद्धि (गी.२-४१) कहा है। ज्ञान दो प्रकार का होता है- स्वाभाविक और नैमित्तिक। नैमित्तक के भी आगे चार भेद है-१. अभावात्मक, २, संशयात्मक, ३. भ्रमात्मक, ४. निश्चयात्मक। गीता के अनुसार व्यवसायात्मिक बुद्धि तो एक ही है मगर अव्यवसायी लोगों की बुद्धियाँ अनेक शाखाओं में बँटी होती हैं (गी. २-४१)। व्यवसायात्मक बुद्धि का भाव है- किसी भी संकल्प को पूरा करने के लिए प्रयत्नशील, एकाग्रबुद्धि, निर्णयात्मक बुद्धि, आगे चलकर इसी को 'बुद्धि-योग' कहा गया है। यही बुद्धि निष्कामकर्मी बनती है। ऐसा योगी ही जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होता है और वही 'स्थितप्रज्ञ' बनता है। (गीता ३-४२) में कहा गया है कि इन्द्रियाँ श्रेष्ठ हैं, इन्द्रियों की अपेक्षा मन श्रेष्ठ है, मन की अपेक्षा बुद्धि श्रेष्ठ की अपेक्षा यह 'आत्मा' अधिक श्रेष्ठ है। दर्शनशास्त्र में धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य, वैराग्य तथा अधर्म, अज्ञान, अनैश्वर्य और अवैराग्य की चर्चा की गई है। इनमें से पहले चार लक्षण सात्त्विक बुद्धि के और अन्त के चार सामसिक बुद्धि के परिचायक हैं। इन प्रथम चार तक निर्णयात्मक-बुद्धि ही पहुँचा सकती है, संशयात्मक तो अन्तिम चार में उलझाकर रख देती है। संशयात्मक तो अन्तिम चार में उलझाकर रख देती है। निर्णयात्मक -बुद्धि मैं और मेरा का चिन्तन करके इस निर्णय पर बहुँच जाती है कि मेरा नश्वर है- मैं अनश्वर हूँ, मैं एक हूँ- मेरा अनेक है, मैं का जन्म नहीं और मेरा का जन्म है। गायत्री मन्त्र में **प्रचोदयात्** साधक की आवश्यकता है और **धीमहि** उस आवश्यकता की पूर्ति का साधन है। धीमहि क्रिया है प्रचोदयात् उसकी प्रतिक्रिया है। धीमहि हेतु साधक को श्रम करना है **प्रचोदयात्** का सम्पादन परमात्मा को करना है। **धीमहि** जितना होगा उतना ही **प्रचोदयात्** होगा, **धीमहि** के गर्भ में **प्रचोदयात्** पलता है। **धीमहि** योग की धारणा को परिपक्व करना है- इसी से **प्रचोदयात्ः** ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति होगी।

(परोपकारी से साभार)

❒❒❒

सदाचार और कर्मण्यता

डा. ओमप्रकाश वेदालंकार

इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह।
दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपरा इहि।।

- अथर्ववेद ५ । ३० । ६

हे मनुष्य! पूरे मन से तू आगे बढ़। जीवटवाले लोगों में निवास करता हुआ यम के दो दूतों 'विलास और प्रमाद' के वश में अपने को कभी मत होने दो।

मनु - प्रोक्त मृत्यु के चार कारणों में से दूसरा कारण है -

आचारस्य च वर्जनात्।

अर्थात् सदाचार का त्याग-इस एक कारण से भी मृत्यु ज्ञानियों तक को नष्ट कर देती है। वेदों का अभ्यास निश्चय ही मृत्यु के भय और कष्ट को दूर करनेवाला है, किन्तु वेद का अध्ययन भी तब व्यर्थ हो जाता है जब तदनुकूल आचरण (सदाचार का पालन) न किया जाए।

पुराणों की मान्यता है -

आचारहीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः।

सम्पूर्ण अंगोंसहित यदि चारों वेद भी पढ़ लिये जाएँ, किन्तु आचार का पालन न किया जाए तो वे वेद भी उस वेदपाठी को पवित्र नहीं करते।

अतः वेदाध्ययन का महत्त्व भी सदाचार के साथ ही है। मनु महाराज भी कहते हैं -

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः। -मनु. ४/१४

वेद-प्रतिपादित धर्म का नित्य सावधान होकर पालन करना चाहिए। सदाचार क्या है? इस विषय में स्मृतिकारों तथा अन्य कतिपय ग्रन्थ-लेखनों ने कुछ विवेचन किया है। मनुस्मृति (द्वितीय अध्याय) में कहा है।

तस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते।।

- मनु. २।१८

परम्परारूप से सद्वर्णों में जो आचारकर्म जिस देश में प्रचलित हैं, वे सदाचार कहे जाते हैं। तथा -

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च। - मनु. १/१०८

जो सत्यभाषणादि कर्मों का आचरण करना है, वही वेद और स्मृति में कहा हुआ आचार है।

स्कन्दपुराण में स्कन्द ऋषि अगस्त्य मुनि से कहते हैं -

विद्वेषरागरहिता अनुतिष्ठन्ति यं मुने।
विद्वांसस्तं सदाचारं धर्ममूलं विदुर्बुधाः।।

हे मने! असूया, रागद्वेषादि दोनों से विमुक्त, सन्त एवं विद्वज्जन जिन आचारणों का अनुष्ठान करते हैं, पण्डित लोग उन आचरणों को धर्म का मूल एवं सदाचार मानते हैं।

महाभारत (अनुशासनपर्व) के अनुसार -

साधूनां च यथावृत्तमेतदाचारलक्षणम्।

साधु, सज्जन पुरुषों का आचरण ही सदाचार हैं।

शास्त्रीय ज्ञान के अतिरिक्त ऐसी अनेक बातें हो सकती हैं, जिन्हें व्यक्ति अपने समाज के श्रेष्ठ पुरुषों या परम्परा से सीखता है। इन्हीं पर समाज की संस्थिति तथा प्रगति आश्रित होती है। समाज के कल्याण से व्यक्ति का कल्याण होता है और वह मृत्यु के मार्ग को छोड़कर 'अमृत' के मार्ग पर अग्रसर होता है। महाभारत में कहा है - ''मृत्यु और अमृत दोनों हमारे इस शरीर में प्रतिष्ठित हैं। मोह, अज्ञान या असत्याचरण से व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होता है और सत्य अर्थात् सदाचार से 'अमृत' प्राप्त करता है।''

बृहदारण्यकोपनिषद् में मृत्यु और अमृत की बहुत सुन्दर विवेचना की गई है -

स यदाहासतो (स यदा आह असतो) मा सद्गमयेति मृत्युर्वा असत् सदमृतं मृत्योर्माऽमृतं गमयामृतं मा कुर्वीत्येवैतदाह।

- बृहदारण्यको. १।३।२८

जब उपासक यह कहता है कि मुझे 'असत्' से 'सत् की ओर ले-चलो' तब यहाँ उसका अभिप्राय है कि 'असत्' ही मृत्यु है और 'सत्' (सदाचार या सत्य) ही अमृत है, अर्थात् मुझे मृत्यु से अमृत की ओर ले-चल- मुझे अमृत कर दे।

महाभारत के आश्वमेधिक पर्व में कुटिल (दुराचारी) जीवन को ही मृत्यु नाम दिया है।

आचार्य चाणक्य का दृढ़ विश्वास है -

मृत्युरपि धर्मिष्ठं रक्षति।

धर्मात्मा, अर्थात् सदाचारी की मृत्यु भी रक्षा करती है।

योगवासिष्ठ में मृत्यु की महान् शक्ति का उल्लेख करते हुए कहा गया है -

मृत्यो न किञ्चिच्छक्तस्त्वमेको मारयितुं बलात्।
मारणीयस्य कर्माणि तत्कर्तृणीति नेतरत्।।

- योगवासिष्ठ ३।२।१०

हे मृत्यु! तू अपने बल से किसी को नहीं मार सकती। जो व्यक्ति मरता है, वह अपने ही कर्मों से मारा जाता है, किसी दूसरे कारण से नहीं।

सदाचार ही नहीं, सदाचारी वृद्धजनों का सदा सम्मान करना भी मृत्यु- रक्षक है और उनका असम्मान मृत्यु आदि अनेक व्याधियों का कारण है -

अपूज्याः यत्र पूज्यन्ते पूज्यनां च विमानना।
त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्।।

अपूज्यों का जहाँ सम्मान होता है और पूज्य-सदाचारीजन धक्के खाते हैं, उस देश या समाज में दुर्भिक्ष, भय और मृत्यु अवश्य अपना प्रभाव दिखाते हैं।

दूसरी ओर सदाचारी वृद्धजनों के सम्मान की महिमा में महर्षि मनु

लिखते हैं-

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्त आयुर्विद्या यशो बलम्।।

- मनु. २।१२१

जो व्यक्ति सदाचारी वृद्धजनों का सदा अभिवादन करते हैं, उनकी आयु, यश, बल और विद्या की अवश्य वृद्धि होती है।

सदाचार से आयु-वृद्धि की चर्चा अनेक बुद्धिमान् व्यक्ति सदा करते रहे हैं। आचार्य चाणक्य कहते हैं।

आचारादायुर्वर्धते कीर्तिश्च।

सदाचार से आयु और कीर्ति दोनों की वृद्धि होती है।

मनु महाराज श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित आचार को परम धर्म बताते हुए कहते हैं-

सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति।।

- मनुस्मृति ४।१५८

जो व्यक्ति चाहे सर्वलक्षणहीन भी क्यों न हो किन्तु सदाचारी, श्रद्धावान् और असूयारहित हो वह अवश्य सौ वर्ष तक जीवित रहता है।

महाभारत के अनुशासनपर्व में भी सदाचार को आयु-वृद्धि का कारण बताया गया है-

आचाराल्लभते ह्यायुराचारल्लभते श्रियम्।
आचारात् कीर्तिमप्रोति पुरुषः प्रेत्य चेह च।।

- महा. अनु. १०४।६

सदाचार से मनुष्य आयु, श्री तथा इस लोक और परलोक में कीर्ति प्राप्त करता है।

सदाचार के अन्तर्गत काम, क्रोध, लोभ आदि सभी वासनाओं पर विजय की भावना समाविष्ट है। योगवासिष्ठकार कहते हैं कि जो इनपर विजय प्राप्त कर लेता है, वह अवश्य मृत्यु को नष्ट कर देता है-

दोषमुक्ताफलप्रोता वासनातन्तुसन्ततिः।
हृदि न ग्रथिता यस्य मृत्युस्तं न जिघांसति।।
लोभव्यालो न भुङ्क्ते यं मृत्युस्तं न जिघांसति।
न निर्दहति यं कोपस्तं मृत्युर्न जिघांसति।।

- योगवासिष्ठ ६।१।२३।५,८,९

जिसके गले में पापरूपी मोतियों से गुँथी वासनारूपी मालाएँ नहीं हैं, जिसे लोभ का सर्प कभी नहीं डसता, जिसे क्रोध नहीं जलाता उसे मृत्यु भी नष्ट नहीं करती।

पुराणशास्त्रों में सदाचार का एक वृक्ष के रूप में बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा गया है-

धर्मोऽस्य मूलं, धनमस्य शाखाः, पुष्पं च कामः, फलमस्य मोक्षः।
असौ सदाचारतरुः सुकेशिन्, संवेवितो येन स पुण्यभोक्ता।।

सदाचार एक ऐसा वृक्ष है जिसकी जड़ धर्म है, शाखाएँ अर्थ हैं, फूल काम है तथा फल मोक्ष है। हे सुकेशिन्! जो इस सदाचार-वृक्ष का भली-भाँति सेवन करता है, वह समस्त पुण्यों का भोक्ता बन जाता है।

महाभारत (शान्तिपर्व १८६।५।७) में देवर्षि नारद ने सदाचार के स्वरूप में कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं का समावेश किया है-

सदा सूर्य की उपासना करें; सूर्य के उदय होने पर कभी न सोयें। प्रातः सायं पूर्व-पश्चिम मुख होकर सन्ध्या के मन्त्रोंसहित सावित्री का पूजन करें, गायत्री मन्त्रों का जाप करें।

दोनों हाथ, दोनों पैर और मुख इन पाँच अंगों को धोकर पूर्व की ओर मुख करके मौनभाव से भोजन करे। भक्ष्य अन्न आदि की निन्दा न करे। वह स्वादिष्ट हो या न हो स्वाद लेते हुए भोजन करे।

भोजन के अनन्तर हाथ धोकर उठे, रात में भीगे पैरों से न सोये। देवर्षि नारद ने इसी को सदाचार का लक्षण कहा है।

कर्मण्यता

मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का तीसरा साधन मनु ने निरालस्य, अर्थात् कर्मण्यता, व्यस्तता या उद्यम बताया है। प्रथम उद्धृत अथर्ववेद के मन्त्र (५।३०।६) में यम के दो दूतों से परे रहने की प्रेरणा है। ये दो दूत हैं- विलास और आलस्य। महामना भर्तृहरि कहते हैं-

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कुर्वाणो नावसीदति।।

- नीतिशतक ८२

मनुष्य का शरीरस्थ सबसे बड़ा शत्रु आलस्य है और सबसे बड़ा बन्धु उद्यम या श्रम है, जिसे करता हुआ वह कभी कष्ट नहीं पाता।

यजुर्वेद के ४० वें अध्याय के द्वितीय मन्त्र में शतायु होने के लिए कर्म की अनिवार्यता प्रतिपादित है-

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः।

कर्म करता हुआ ही मनुष्य सौ वर्ष जीने की इच्छा करे।

इसी अध्याय के १४ वें मन्त्र में अविद्या, अर्थात् कर्म (पुरुषार्थ) द्वारा मृत्यु को पार कर विद्या से 'अमृत' की प्राप्ति का आदेश है-

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।

महात्मा बुद्ध के वचन हैं-

अप्पमादो अमतपदं पमादो मच्चुनो पदं।
अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता।।

- धम्मपद २।१

अप्रमाद ही अमृत है और प्रमाद मृत्यु। अप्रमादी कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होते, किन्तु प्रमादी तो मरे हुए ही हैं।

कर्म से दीर्घ जीवन की प्राप्ति होती है- यह तथ्य अनुभवसिद्ध है। सेवा-निवृत्त होने पर कर्म के अभाव में मनुष्य जितनी शीघ्रता से क्षीण होने लगा है उतना सेवा-प्रवृत्त होने पर नहीं। सभी महापुरुषों के जीवन में श्रम की प्रधानता रही है उनका जीवनसूत्र रहा है-

प्रत्येक समय के लिए काम
और
प्रत्येक काम के लिए समय

ऋषि दयानन्द से कलकत्ता में किसी ने पूछा- ''ऋषिवर! वासना ने क्या कभी आपको पीड़ित नहीं किया?'' प्रश्न का उत्तर देने के लिए ऋषि दयानन्द थोड़ी देर के लिए समाधिस्थ हो गये और फिर आँख खोलकर बोले-'' प्रियवर! मैंने अपने विगत सम्पूर्ण जीवन पर एक दृष्टि डाली है किन्तु मुझे कहीं कामवासना का कुछ पता नहीं चला। सम्भवत: इस काल में वासनाएँ आई हों और उन्होंने दरवाजा भी खटखटाया हो, किन्तु मन को खाली न देखकर- मुझे कार्य-व्यस्त पाकर वहीं दरवाजे से ही लौट गई हो!''

कर्मण्यता का हमारे राष्ट्रीय जीवन में आज प्राय: अभाव है। इसी कारण अन्य देशों की तुलना में हमारा जीवन भी अल्प है। न्यूजीलैण्ड की औसत, आयु इस समय ६५ वर्ष है। जर्मनी में पुरुषों की ६९ तथा स्त्रियों की औसत आयु ७४ वर्ष है। अन्य देश डेनमार्क, रूस आदि की औसत आयु तो और भी अधिक है। रूस में १०० या इससे अधिक आयु के पुरुष सहज उपलब्ध हैं। किन्तु 'जीवेम शरद: शतम्' का पाठ करनेवाले हमारे देश की औसत आयु कर्मण्यता के अभाव के कारण लगभग ४० वर्ष है। प्रकृति हमें सदा गतिशीलता का पाठ पढ़ाती है। सूर्य, चन्द्र, तारे, नदियाँ, वायु, वर्षा सभी तो गतिमान् हैं। यहाँ तक कि सृष्टि-संचालनरूप अपने कार्य में भगवान् भी एक क्षण के लिए विश्राम नहीं करता।

किसी कवि ने बहुत सुन्दर कहा है-

कर्म कर रे कर्म कर, मत कर्म से तू जी चुरा।
कर यथावत् कर्म तू, है कर्म से बचना बुरा।।
तू तो भोले! चीज क्या है, है तेरी औकात क्या।
खुद विधाता बँध रहा है, कर्म-बन्धन में सदा।।

रामनरेश त्रिपाठी हिन्दी के प्रसिद्ध कवि हुए हैं। अपने खण्डकाव्य 'पथिक' में संसार-पथ से विमुख पथिक के लिए कर्म के सम्बन्ध में उन्होंने कुछ उद्‌बोधक पंक्तियाँ लिखी हैं-

जगन्नियन्ता की इच्छा से यह संसार बना है।
उसकी ही क्रीड़ा का रूपक यह समस्त रचना है।।
है यह कर्मभूमि जीवों का यहाँ कर्मच्युत होना।
धोखे में पड़ना अलभ्य अवसर से है कर धोना।।
फिर कहता हूँ न दु:ख से कर्ममार्ग सम्मुख है।
प्रेमपन्थ है कठिन यही दु:ख ही प्रेमी का सुख है।।
कर्म तुम्हारा धर्म अटल है, कर्म तुम्हारी भाषा।
हो सकर्म मृत्यु का स्वागत, जीवन की अभिलाषा।।

दिया गया है। और विचारधारा में मानव-जीवन का एक नाम 'यज्ञ' दिया गया है। इसमें शतायु होना ही 'शतक्रतु' (शतयाजी) बनना है। इस जीवन को भी प्राचीन ऋषियों ने चार भागों में विभाजित कर उन्हें 'आश्रम' नाम दिया है। 'आश्रम' शब्द ही श्रम की प्रधानता को सूचित करता है-

'आ समन्तात् श्रमं क्रियतेऽस्मिन्निति आश्रम:।'

आश्रम वह है जिसमें सब ओर से श्रम किया जाए। संन्यासी के लिए चोटी, जनेऊ, यज्ञ जैसे उत्तम कर्म भी अनिवार्य नहीं हैं, किन्तु आश्रमी होने से श्रम उसके लिए भी विधेय है-

संन्यसेत् सर्वकर्माणि धर्ममेकं न संन्यसेत्।

ऐतरेयब्राह्मण में ब्रह्मचारी रोहित की कथा सर्वप्रसिद्ध है। वन से लौटते हुए ब्राह्मण-पुत्र रोहित को इन्द्र कर्म का सन्देश देते हुए कहते हैं-

नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति इति रोहित शुश्रुम।
पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरत: रखा। चरैवेति चरैवेति।।

ऐतरेयब्राह्मण ७।१३

हे रोहित! सुनते हैं कि श्रम से जो थका नहीं है ऐसे पुरुष को लक्ष्मी नहीं मिलती। बैठे हुए आदमी को पाप धर दबाता है। इन्द्र उसी का मित्र है जो बराबर चलता रहता है। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्। चरैवेति चरैवेति।।

-ऐतरेय ब्राह्मण ७।१७

चलता हुआ मनुष्य ही मधु पाता है। चलता हुआ ही स्वादिष्ठ फल चखता है। सूर्य कर परिश्रम देखो जो नित्य चलता हुआ कभी आलस्य नहीं करता, इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

श्रम सभी के लिए विधेय है। गीता के अनुसार-

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय:। - गीता ३/१०

कर्मों के द्वारा ही राजा जनक आदि को पूर्ण सिद्धि प्राप्त हुई थी। सम्राट् अशोक ने अपने शिलालेखों पर यह ध्येयवाक्य ही अंकित करवा दिया था-

सर्वा च निरतिर्भवतु या श्रमरति:।

श्रम से प्रेम यही हमारा एकमात्र मनोरंजन बने।

मनुस्मृति में कहा है-

आरभेतैव कर्माणि श्रान्त: श्रान्त: पुन: पुन:।
कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते।।

- मनु. ९।३००

श्रम से पुन: पुन: श्रान्त होने पर भी काम करता ही जाए। काम में लगे रहने पर पुरुष को विजयश्री अवश्य मिलती है।

इस प्रकार मृत्यु पर यदि हम विजय प्राप्त करना चाहते हैं तो आलस्य को जीवन से परे भगाना होगा। यम के दो दूत 'विलास और प्रमाद' सदा हमारा पीछा करते रहते हैं। इनके वश में कभी न आनेवाला व्यक्ति कालजित् बन जाता है। 'कालजित् विश्वजित्' - काल को जीतनेवाला विश्व को जीत लेता है। मन्त्र की भावना के अनुसार कब्रिस्तान 'मुर्दों की बस्ती' में वास मत करो, जिन्दों की बस्ती में रहो। जिन्दों की तरह जीओ, काम करो और मृत्युञ्जय बनो!

❒❒❒

स्वर्गिक सुख के दस उपाय

डा. अशोक आर्य

मानव सदा सुख की कामना करता है। इस सुख को पाने के लिए वेद में दस उपाय बताये हैं। यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के अनतर्गत आने वाले मन्त्र २२ में सुख पाने के लिए यह दस उपाय इस प्रकार बताये हैं:-

जनयत्यै त्वा सँयौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा धर्मोऽसि विश्वायुरुरुप्रथाऽउरु प्रथस्वोरु ते। यज्ञपति: प्रथतामग्निष्टे त्वचं मा हिंसीद्देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके।।

(यजुर्वेद १.२२)

हम चाहते है कि हमारा गृहस्थ जीवन सुखमय हो, आनन्द मय हो किन्तु कैसे हो? यह जानने का हम यत्न ही नहीं करते। यदि कभी कुछ साधन इस के लिए सोच भी लेते हैं तो इन साधनों को हम अपनाते ही नहीं। फिर हमें यह आनन्द कैसे मिले? जो हम चाहते हैं, उसे समझना भी होता है, उसे पाने के लिए उपाय भी करने होते हैं, यत्न भी करना होता है। तब ही वह मिलता है। हम सुख चाहते हैं, स्वर्गिक आनन्द चाहते हैं। यह कैसे मिल सकता है? इसे पाने के लिए हमारे दयालु परमपिता ने कुछ उपाय बताते हुए इस मन्त्र के मध्यम से हमें उपदेश किया है कि हे प्राणी! यदि तू अपने गृहस्थ जीवन में स्वर्गिक आनन्द चाहता है तो तू इस मन्त्र में बताये दस उपाय कर। इन दस उपायों को अपना कर ही तू इस सुख को पा सकता है। यह उपाय हैं:-

१. उत्तम सन्तान निर्माण का आश्रम:-

गृहस्थ है प्रजा को बढ़ाने के लिए। इस प्रजा की उत्पत्ति के लिए ही पत्नी घर में आती है और कहती है कि हे पतिदेव! मैं तुझे साधारण नहीं अपितु उत्तम सन्तान देने के लिए आई हूँ। इस निमित्त तेरा वरण किया है, सम्पर्क किया है।

हमारा गृहस्थ भोग-विलास के लिए नहीं है। यह उत्तम सुप्रजा की उत्पत्ति के लिए है। इसलिए पिता उपदेश कर रहे हैं कि हे जीव! तू यत्न कर कि तेरी होने वाली सन्तान उत्तम गुणों से युक्त हो।

२. सन्तान प्रभु की दी धरोहर है:-

गृहस्थ को हमने सन्तान को प्रजा को बढ़ाने के लिए ग्रहण किया है किन्तु इससे हमारी जो सन्तान बढती है, वह सन्तान वास्तव में हमारी सम्पत्ति नहीं होती। इस तथ्य को हम समझें कि हमने इस सन्तान को जन्म दिया है यह सन्तान उस प्रभु की ही दी हुई धरोहर है, जिस प्रभु का नाम अग्नि है। हम सब मन्त्र की इस भावना को समझें। हम जानें कि यह जिसे हम अपना पुत्र कहते हैं, इसे देने वाला वह अग्निरुप प्रभु है। इस कारण यह उसकी दी हुई धरोहर मात्र है। जिसे हम प्रतिदिन अपना कहते हैं, इसे कुछ समय के लिए प्रभु ने हमें उधार दिया है।

३. अग्नि व सोम के विकास का प्रयास:-

मन्त्र कहता है कि हे प्राणी! मेरी बात को बड़े ध्यान से समझ कि यह, जिसे तू अपनी सन्तान मान कर चल रहा है, यह तेरी नहीं है, यह दो तत्त्वों से मिलकर बनी है। इसमें एक तत्त्व का नाम है अग्नि और दूसरे को सोम के नाम से जानते है। इस प्रकार यह अग्नि ओर सोम, इन दो तत्त्वों की है। इस सन्तान को पिता ने अग्नि तत्त्व दिया है। इस सन्तान के निर्माण में माता ने सोम तत्त्व दिया है। हमारे जीवन में जो आनन्द है, जो सुख हम अनुभव करते हैं, जिस प्रसन्नता को हम पाना चाहते हैं, वह सब अग्नि तत्त्व और सोमतत्त्व का ही परिणाम है।

४. अन्न के लिए पुरुषार्थ :-

अन्न एक ऐसी वस्तु है कि जिसका उपभोग इस जगत् के प्रत्येक प्राणी को करना होता है। इसे पाने की कामना करते हुए सुख का जो चतुर्थ साधन मन्त्र बता रहा है, वह यह है कि गृहपत्नि उस पिता से प्रार्थना करती है कि हे प्रभु! अन्न पाने के लिए मैं तुझे ग्रहण करती हूँ। मै आप का ध्यान करती हूँ आप से प्रार्थना करती हूँ ताकि मुझे उत्तम अन्न प्राप्त हो सके। इससे जो बात स्पष्ट होती है वह यह कि हम अपने जीवन को आगे चलाने के लिए अपने भोजन के साधन पाने के लिए पुरुषार्थ करें, मेहनत करें और मेहनत करके ऐसा धन प्राप्त करें जिस सेहम अन्नादि भोजन प्राप्त कर सकें।

५. शक्ति को बनाये रखें:-

हे जीव! तू उत्तम अन्न शक्ति का ही परिणाम है। उत्तम अन्न से जो उत्तम रस शरीर में आते हैं, उन रसों के परिणाम स्वरुप ही हम उत्तम, स्वस्थ सन्तान प्राप्त करते हैं। इस अन्न के सेवन से ही हमारे शरीर में प्राण शक्ति निवास करती है। प्राण भी तब तक ही रहते हैं, जब तक हमारा शरीर क्रियाशील है। यदि शरीर क्रियाहीन हो जाता है तो प्राण भी इससे दूर होना चाहते हैं। इसलिए इस प्राण शक्ति को सम्भालने के लिए जीव को शक्ति का केन्द्र बनना, शक्तियों का पुंज बनना आवश्यक होता है।

६. शरीर, मन व मस्तिष्क का सन्तुलित व उत्तम विकास:-

हे मानव! परमपिता ने तुझे सौ वर्ष की आयु दी है। इस आयु को पूर्ण कहा जाता है। तू पूर्ण आयु वाला है। तेरे जीवन को व्यवस्थित रुप से चलाने के लिए हमारे प्रभु ने तीन साधन दिये हैं। यह साधन जीवन को व्यवस्थित ढंग से व उत्तम रीति से चलाते हैं। यह साधन हैं, शरीर, मन तथा मस्तिष्क। इन तीनों का स्वस्थ होना, गतिशील अथवा क्रियाशील होना तथा सतत् आगे बढ़ना, उन्नति पथ पर चलना आवश्यक होता है। अत: ऐसा यत्न कर कि यह तीनों सक्रिय बने रहें।

७. हम अपने ह्रदय को विशाल बनायें:-

हे जीव! प्रभु ने तुझे विस्तार वाला बनाया है। यह प्रभु का ही आदेश है कि तू निरन्तर अपना विस्तार करते हुए आगे को बढ़। निरन्तर विस्तार को, उन्नति को प्राप्त हो। इस प्रयत्न में तू अपनी शक्तियों को तेजी से बढ़ा तेजी से विस्तृत कर। यदि तू अपनी शक्तियों का विस्तार

करेगा, अपनी शक्तियों को बढावेगा तो तेरे जीवन की इस उन्नत परम्परा से तेरे हृदय में भी विशालता आवेगी। अत: अपने हृदय में विशालता लाने के लिए भी तू अपनी शक्तियों का विस्तार कर।

८. यज्ञ से शक्ति विस्तृत होती है:–

जिस प्रभु के माध्यम से हम यह वेदोपदेश प्राप्त कर रहे हैं वह प्रभु ही हमारी शक्तियों को बढाने वाला है। इसलिए यहां यह मन्त्र हमें उपदेश कर रहा है कि वह पिता हमारे सब यज्ञों का रक्षक है। यह जो तू शक्तियों के विस्तार के कार्य में लगा है, यह भी यज्ञ ही है। इसलिए मन्त्र कहता है कि वह पिता तेरी सब शक्तियों का विस्तार करें इन्हें बढाने में, विस्तृत करने में सहयोगी हो। तू अपने जीवन को यज्ञमय बना। जिस प्रकार यज्ञ की अग्नि सदा ऊपर ही उठती है, आगे ही बढती है तथा जो कुछ इस यज्ञ में डाला जाता है, उसे भी अपने साथ ऊपर, अपने साथ आगे को ले जाती है। इस प्रकार अपने जीवन को यज्ञमय बना कर तू भी अपनी शक्तियों का भरपूर विस्तार कर।

९. हम सदा प्रभु से जुडे रहें:–

तथ्य की बात तो यह है कि हमारी जितनी भी प्राप्तियां हैं, हमारी जितनी भी उपलब्धियां हैं, वह सब उस पिता के आशीर्वाद का ही परिणाम हैं, उसकी दया, कृपा का ही परिणाम हैं। प्रभू हमारे साथ है, तब ही हम यह सब कुछ पा सकते हैं अन्यथा हम कुछ भी प्राप्त न कर पाते। इसलिए हम सदा यह प्रयास करें कि हमारा प्रभु से सदा सम्पर्क बना रहे तथा कोई ऐसा काम न करें कि जिससे वह रुष्ट हो जावे और हमारा सम्पर्क, हमारा साथ छोड़ दे। प्रभु सम्पर्क रहेगा, तब ही हम ऊपर की इन आठों बातों को अपने जीवन में ला सकेंगे, अन्यथा नहीं।

१०. प्रभु कृपा से हमारा परिपाक हो:–

मानव परिपक्वता से ही सफलताएं प्राप्त करता है। यदि वह अपने अन्दर परिपक्वता नहीं ला पाता तो वह ऊल-जलूल कार्य ही करता रहेगा, जिनका कुछ भी परिणाम नहीं होता। इसलिए मन्त्र के अन्तिम भाग में मन्त्र यह उपदेश कर रहा है, यह सन्देश दे रहा है कि वह प्रभु सब का प्रेरक होने से सब को-मार्ग-दर्शन करता रहता है वह पिता हमें परिपक्व बनावे। परिपक्व होने से हमारी शारीरिक, हमारी मानसिक व हमारी बौद्धिक शक्तियां उत्तम प्रकार से विकसित हों व विकास की और निरन्तर आगे बढ़ती रहें। इस प्रकार जो ठीक से उत्तम विधि से परिपाक बनेगा, उसके द्वारा ही वह तुझे सर्वोत्तम स्थान देगा, जिसे स्वर्ग के नाम से जाना जाता है।

❒❒❒

पाप निवारक देव!

आचार्य अभयदेव विद्यालंकार

उदुत्तमं वरूण पाशस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम।।

-ऋ १।२४।१५; यजु:. १२।१२; साम. पू. ६।३।१०।४; अथर्व. ७।८३।३

ऋषि:– शुन:शेपो देवरात:।। देवता – वरूण: ।। छन्द:– त्रिष्टुप्।।

विनय– हे पापनिवारक देव! तूने हमें तीन बन्धनों से बाँध रखा है। उत्तम बन्धन हमारे सिर में हैं जिससे हमारा आनन्द और बुद्धि बँधे हुए हैं, ढके हुए हैं, रुके हुए हैं। यह सत्त्वगुण का (कारणशरीर का) बन्धन कहा जा सकता है। हृदयस्थ मध्यम बन्धन से हमारा मन और सूक्ष्म प्राण बँधे हुए हैं। यह रज और सूक्ष्म शरीर का बन्धन है। नाभि से नीचे तमोगुण और स्थूल शरीर का अधम बन्धन है जिससे हमारा स्थूल प्राण और स्थूल शरीर बँधा हुआ है। हे वरुण! इनसे बँधे रहने के कारण हमसे तेरे नियमों का भङ्ग होता रहता है और हम पापी बनते रहते हैं। उत्तम बन्धन द्वारा, सच्चा ज्ञान न मिलने से; मध्यम द्वारा, राग-द्वेष काम -क्रोध आदि के वशीभूत होने से; और अधम द्वारा, शारीरिकतया त्रुटियुक्त कार्य करने से हम पापी हैं। हे देव! तू हमारा उत्तम पाश ऊपर की ओर खोल दे जिससे कि मेरी बुद्धि का द्युलोक के साथ सम्बन्ध स्थापित हो जाए और मुझमें सत्य-ज्ञान का प्रवेश होने लगे। मध्यम पाश को बीच से खोल दे जिससे अन्तरिक्षलोक के समुद्र में मेरे मन के प्रविष्ट हो जाने से इसके राग-द्वेषादि मल धुल जाएँ तथा मेरा मन सम हो जाए और अधम पाश को नीचे गिरा दे जिससे मेरे पार्थिव शरीर के सब कुलुषित परमाणु पृथिवीतत्त्व में लीन हो जाएँ और हमारा शरीर नीरोग, स्वस्थ और निर्दोष होकर प्रभु के कार्य कर सके। हे प्रकाशमय बन्धनरहित देव! इन बन्धनों के टूट जाने पर हम तेरे व्रत में रह सकेंगे, हमसे तेरे नियमों का भङ्ग होना बन्द हो जाएगा। अन्त में मैं 'अदिति' (मुक्ति) के ऐसा योग्य हो जाऊँगा कि एक दिन आयेगा जबकि मेरी आत्मा स्थूलशरीररूपी बन्धन को नीचे पृथिवी पर छोड़कर और मानसिक सूक्ष्मशरीर को अन्तरिक्ष में लीन करके अपने ऊपर बन्धन के भी टूट जाने से ऊपर-द्युलोक-को प्राप्त हो जाएगा। बिना इन तीन बन्धनों को एक बार खोल दो- ज़रा ढीला कर दो- जिससे कि मेरा मार्ग साफ हो जाए और मैं यत्न करता हुआ तेरे व्रत में रहनेवाला निष्पाप, मोक्षाधिकारी हो जाऊँ।

शब्दार्थ-वरून= हे पापनिवारक देव! तू अस्मत्=हमारे उत्तमं पाशं उत्=उत्तम बन्धन को ऊपर की ओर और मध्यमं वि= मध्यम बन्धनों के टूटने से आदित्य= हे प्रकाशमय बन्धनरहित देव! वयं तव व्रते = हम तेरे नियमों में रहते हुए अनागस:= पापरहित होकर अदितये= बन्धन-राहित्य, स्वतन्त्रता, मुक्ति के लिए योग्य स्याम= हो जाएँ।

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष-९ अंक-६ मुम्बई जून - २०१८ || पृष्ठ-१६ || मूल्य- रु. ९/-

निज ज्येष्ठ - २०७४ (२०१८) Post Date : 25-06-2018 MCN/136/2016-2018 MAHRIL 06007/31/12/18-TC पोष्ट आफिस : सांताक्रुज़ (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : **संगीत आर्य**

मुद्रक एवं प्रकाशक : **चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्णा प्रिंटिंग प्रेस,** २६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड़), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई-४०० ०५४. से प्रकाशित किया। ● **दूरभाष : २६६० २८०० / २६६० २०७५**

प्रति,

टिकट

संसार-चक्र में आनन्द नहीं

महात्मा आनन्द स्वामी

सर न्यूटन थे न! बहुत बड़े वैज्ञानिक थे वे। 'इस पृथिवी में आकर्षण-शक्ति है, और वह प्रत्येक वस्तु को अपनी ओर खीचती है'- यह सिद्धान्त सबसे पूर्व उन्होंने वृक्ष से सेब को गिरते देखकर निकाला था। वैसे सिद्धान्त तो पहले ही था, उन्होंने इसे जानकर संसार को बताया।

एक दिन उन्हें गर्मी लगी तो एक पंखा बनाया उन्होंने। पंखा बन गया तो प्रश्न उत्पन्न हुआ-इसे हिलाये कौन? न्यूटन महोदय ने एक दन्दानेदार चक्र बनाया। ऐसा प्रबन्ध किया कि चक्र चले तो पंखा भी चले, हवा देने लगे। परन्तु फिर प्रश्न उत्पन्न हुआ कि चक्र कैसे चले? न्यूटन ने चक्र के साथ तनिक ऊपर करके गेहूँ के कुछ दाने रख दिये। चक्र में दो चूहे रख दिये। चूहों ने गेहूँ के दानों को देखा तो उछलकर चक्र के ऊपरवाली सीढ़ी पर पहुँचे कि दानों तक पहुँच जायँ, परन्तु वे तो दानों तक नहीं पहुँच पाए, उनके वज़न से चक्र हिल गया। वह सीढ़ी नीचे आ गई। चूहे फिर कूदे। चक्र फिर हिला। सीढ़ी फिर नीचे आ गई। इस प्रकार वे चूहे बार-बार छलाँग लगाते कि अब मिल जायँ गेहूँ के दाने, अब मिल जायँ। उनकी इस उछल-कूद से पहिया चलने लगा, पंखा हिलने लगा। न्यूटन को हवा मिलने लगी। चूहों को एक भी दाना नहीं मिला।

अरे ओ मानव! सोचकर देख, तू उन चूहों की भाँति छलाँग के पश्चात् छलाँग लगाता है कि आनन्द के दाने तुझे मिल जायँ, परन्तु इस संसार-चक्र में ऐसा फँस गया है कि तुझे ये दाने कभी मिलते नहीं।

आनन्द की खोज

एक कुत्ता कई दिनों से भूखा था। खाना खोजता फिरता था। चलते-चलते वह एक नदी के पास पहुँचा। तट पर एक वृक्ष था। वृक्ष पर पत्ते नहीं थे, केवल शाखाएँ थीं। उनमें से एक शाखा पर एक रोटी लटक रही थी। वृक्ष का और रोटी का प्रतिबिम्ब पानी में पड़ रहा था। कुत्ते ने पानी की ओर देखा। समझा- सामने रोजी है। उसमें छलाँग लगा दी। पानी हिला तो रोटी परे जाती प्रतीत हुई। वह और आगे बढ़ा तो रोटी और आगे जाती विदित हुई। इस प्रकार वह बार-बार आगे बढ़ता, बार-बार रोटी आगे बढ़ जाती। अन्त में, मॅझधार में पहुँचा; डूबा और समाप्त हो गया।

अरे मनुष्य! तू भी तो भूखा फिरता है। जन्म-जन्म से आनन्द की प्यास तेरे चित्त में है। इसको खोजता फिरता है। तूने सोचा-जिसके पास धन है, वह सुखी है, और मार दी धन के पानी में छलाँग, किन्तु आनन्द तो मिला नही, आनन्द की रोटी आगे हो गई।

तूने सोचा कि विवाह में सुख है। पकी-पकाई रोटी मिल जाती है, सुख और शांति मिल जाती है। लगा दी छलाँग विवाह के जल में, किन्तु सुख तो मिला नही। आनन्द की रोटी और आगे हो गई।

तूने सोचा कि आनन्द सन्तान में है। तूने लगा दी छलाँग। पानी फिर हिल गया। रोटी और आगे हो गई।

इस प्रकार मान-सम्मान में, शासन में, मकान में, सम्पत्ति में कहीं भी आनन्द नहीं। अरे छलाँग लगाना चाहते हो तो लगाओ, किन्तु आनन्द की रोटी मिलेगी नहीं। कुत्ते में यदि बुद्धि होती तो पह पानी में छलाँग लगाने के स्थान पर निहारता ऊपर की ओर। वृक्ष पर चढ़ने का प्रयत्न करता, रोटी मिल जाती।

अरे मनुष्य! आनन्द की रोटी नीचे नहीं, वृक्ष के ऊपर है, आनन्द की इच्छा है तो ऊपर चढ़ो, नीचे मत गिरो!

घूँघट के पट खोल रे, तो पिया मिलेंग

एक कमरे में एक सज्जन बैठे थे। दीवार पर घड़ी लगी हुई थी। लगातार चलती हुई यह टकटक कर रही थी। वह सज्जन इसकी टकटक को सुन रहे थे। बाहर गली में उँची ध्वनि से बाजे बजने लगे। इस सज्जन को घड़ी की ध्वनि आनी बन्द हो गई। भयभीत होकर उसने नौकर को बुलाकर कहा- ''देखो तो सम्भवत: यह घड़ी चलनी बन्द हो गई है। इसकी ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती।''

नौकर ने ध्यान से घड़ी को देखा। वास्तविक बात को समझकर बोला- ''घड़ी बन्द नहीं हुई। बाहर की ध्वनि इतनी अधिक है कि इसकी टकटक सुनाई नहीं देती।''

मनुष्य का यह मन एक कमरा है। इसके अन्दर परमात्मा की ध्वनि घड़ी की तरह लगातार टकटक करती है, लगातार बोलती है। किन्तु बाहर की इच्छाओं और वासनाओं के जो बाजे बजा रखे हैं, उन्होंने इस ध्वनि को ही दबा दिया है। अन्दर के पट तब खुलें, जब बाहर के पट बन्द हों। बाहर के पट बन्द करने से ही घूँघट के पट खुलते है, तब प्रियतम प्रभु का दर्शन होता है। तब उनकी ध्वनि सुनाई देती है।

❑❑❑